देवेंद्र कुमार

पेड़ नहीं कट रहे हैं

H
028.5 D 492 P
D 492P

Per nahin Kat rahe hain

पेड़ नहीं कट रहे हैं

Devendra Kumar

देवेंद्र कुमार

Catalogued

Ishan Prakashan Noida

ईशान प्रकाशन
नौएडा (उ. प्र.)

Library IIAS, Shimla
H 028.5 D 492 P
00078454

H 028.5
D492 P

Acc. No. 78154
Date 22.3.92
SIMLA.

मूल्य : रु. 10.00

© देवेंद्रकुमार ● प्रथम संस्करण : 1989
ईशान प्रकाशन, सी-3, सैक्टर-15, नौएडा (उ. प्र.) द्वारा प्रकाशित और
मॉड़र्न प्रिंटर्स, सी-22, मॉडल टाउन, नई दिल्ली, द्वारा मुद्रित ● चित्रकार : चंच

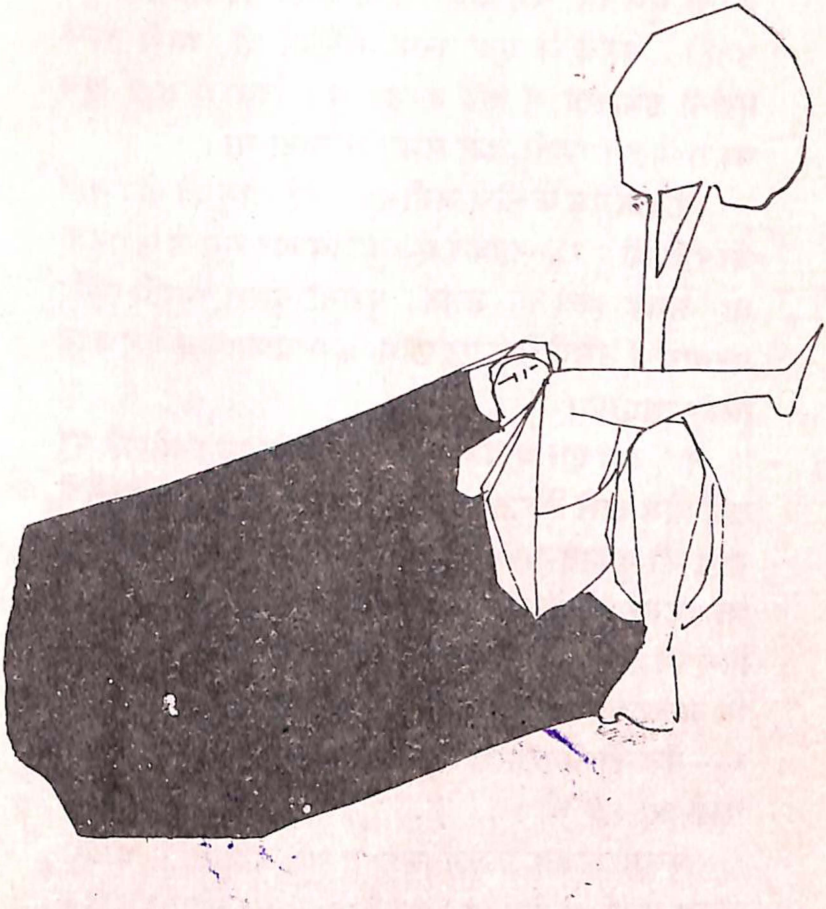

आकाश की काली चादर पर सितारे चमक रहे थे। हवा चुप थी, पेड़ों के पत्ते सो रहे थे, घोंसलों में परिंदे आराम की नींद में थे। सड़क पर चौकीदार की लाठी खट्-खट्

करती घूम रही थी, कभी-कभी सीटी की आवाज गूँज उठती। सड़क के एक तरफ कोठियाँ थीं, दूसरी तरफ पुरानी इमारतों में कई दफ्तर थे। दिन में यहाँ खूब चहल-पहल रहती, इस समय सन्नाटा था।

लेकिन पेड़ के नीचे जमीन पर लेटे जानू को नींद नहीं आ रही थी। रह-रहकर एक ही विचार मन में उभरता था—सुबह होते ही उसका पुराना दोस्त, गर्मी-सर्दी-बरसात में उसके सिर पर छाया करनेवाला एक पेड़ काट लिया जाएगा।

हाँ, अब इस बात में कोई संदेह नहीं था। चौराहे पर खड़े होने वाले सिपाही ने यही बताया था। पेड़ के नीचे चाय की दुकान चलाने वाले भीमसिंह ने भी यही कहा था। दूसरे लोगों की भी यही राय थी कि पेड़ अब एक-दो दिन का ही मेहमान है। और अब तो किसी के बताने की भी जरूरत नहीं रह गई थी। जानू कई दिनों से देख रहा था—पेड़ की ठीक सीध में काली, चमकीली सड़क बनती चली आ रही थी।

पुरानी सड़क ऊबड़-खाबड़ थी, बरसात में जगह-जगह गड्ढे हो गए थे। इसलिए डामर की नई सड़क उसकी आँखों को अच्छी लगी थी। सड़क चौड़ी की जा रही थी। एक दिन जानू ने काम करनेवाले मजदूरों को कहते सुना था—"पेड़ नहीं काटा तो सड़क सीधी नहीं बन

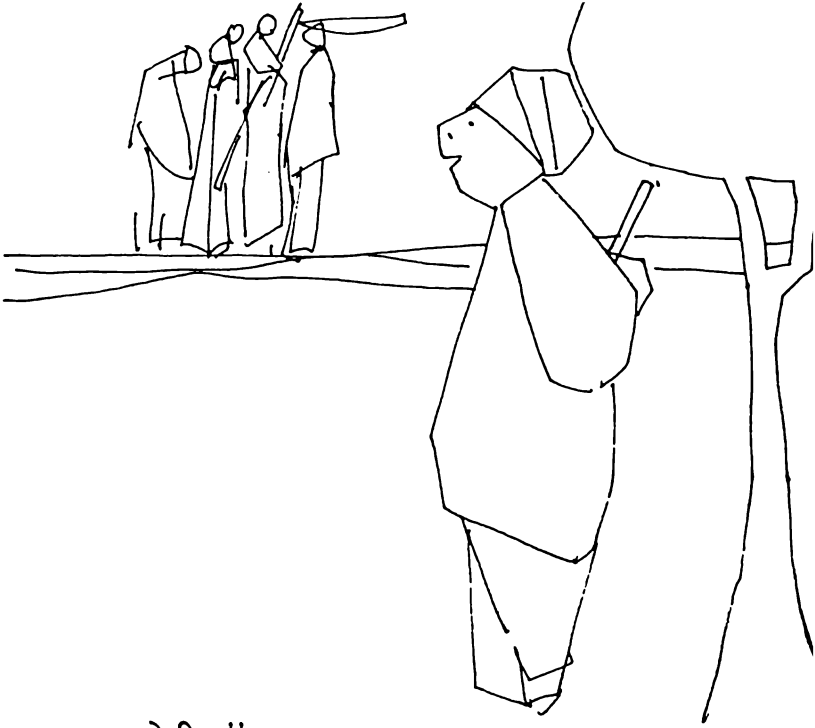

सकेगी।"

सुनकर जानू सन्न रह गया था। एकाएक अपने कानों पर भरोसा नहीं हुआ था। वह सबसे पूछता फिरा था। यह देखकर तो उसे और भी दुख हुआ कि किसी को पेड़ की चिंता नहीं है। सब कह रहे थे—"सीधी सड़क बनाने के लिए पेड़ तो काटना ही होगा।"

किसी को पेड़ की चिंता होती भी क्यों? उस पेड़ से

किसी को क्या लेना-देना था। पेड़ तो केवल जानू का था। जैसे जानू सिर्फ पेड़ का था। यह तो जानू को ही पता था कि रात को सबके सो जाने के बाद पेड़ उससे कैसे बातें करता है। धीरे-धीरे वह पेड़ पर बसेरा करनेवाले हर पंछी की आवाज से परिचित हो गया था।

कई वर्षों से पेड़ के नीचे ही जानू का घर था। उसकी हर रात पेड़ की घनी छाया में बीतती थी। हाँ, दिन में जरूर पराई हो जाती थी वह जगह। सुबह उसके उठते ही भीम सिंह चायवाला अपनी दुकान जमा लेता था। उसकी अँगीठी से खूब धुआँ उड़ता। चाय पीनेवाले भी शोरगुल करते। एक पानवाला भी आ बैठता था। लेकिन फिर भी पेड़ को दूर से देखकर ही जानू के बारे में पता चल सकता था। पेड़ की एक नीची डाल पर जानू अपना थैला लटकाता था। उसमें रहते थे—सड़क से बीने गए कागज, इधर-उधर मिले लोहे के टुकड़े और खाली बोतलें। हर रविवार वह थैले की चीजें नल बाजारवाले कबाड़ी को सौंप देता था। हाँ, रंगीन तसवीरें जरूर अपने लिए बचा लेता था जानू। उसके पास काफी तसवीरें इकट्ठी हो गई थीं। कुछ फूलों की थीं, एक-दो फिल्मों की और एक चित्र भगवान जी का था। उन चित्रों को लपेटकर डोरी के सहारे पेड़ से लटका दिया गया था। कुछ ऊपर, पत्तों के बीच वह अपने कपड़ों का बंडल

रखता था। नहाकर वही पहन लेता था।

जानू ग्यारह या बारह वर्ष का हो गया था। उसकी उम्र का यह हिसाब चौकीदार चाचा ने लगाया था, जानू को खुद कुछ मालूम नहीं था इस बारे में। सुबह-सुबह जानू बस्ती की तरफ निकल जाता था। बोझा ढोने का या कोई और काम मिल जाता तो कर लेता, नहीं तो आने-जानेवाले बाबू लोगों से कुछ माँग लेता। सड़क के एक ओर बनी कोठियों में कारवाले साहब लोग रहते थे, उनके अंदर घुसने की हिम्मत कभी नहीं जुटा सका था वह। बस्ती में जाते समय भीम सिंह चायवाले को सामान का ध्यान रखने के लिए कह जाता था। इस पर भीम सिंह खिलखिलाते हुए कहता था—"बेफिक्र होकर जाओ। चोर तो चोर, चिड़िया को भी नहीं फटकने दूँगा।"

दिन में परिंदे सचमुच नहीं आते थे पेड़ के पास। पंछी सुबह-सुबह उड़ जाने के बाद दिन ढले ही लौटते हैं।

कल के बाद ये परिंदे कहाँ रहेंगे—लेटा-लेटा यही सोच रहा था जानू। इन बेचारों को क्या पता कि कल सुबह दाने की खोज में उड़ जाने के बाद पेड़ काटनेवाले आ पहुँचेंगे। और शाम को जब वे थककर अपने घोंसलों की तरफ लौटेंगे तो···तो···

यही सोचते-सोचते जानू सिसक उठा। पता नहीं

कितनी देर तक आँसू बहते रहे। आँसू अपने लिए थे, या कल बेघर हो जानेवाले परिंदों के वास्ते या अपने दोस्त पेड़ के कट जाने का दुख था—यह जानू को खुद पता नहीं था। और आँसूं थे कि बहते जा रहे थे।

हाँ, जानू एक अकेला लड़का था। आवारा, अनाथ, बेसहारा—लोग जो जी में आता उसे कहते थे। वह कौन था, कहाँ से आया, इस बारे में कोई नहीं जानता था। सड़क के कोनेवाले बँगले का चौकीदार, जो चौकीदार चाचा के नाम से मशहूर था, कई साल पुरानी घटना इस तरह बताता है—

एक रात वह कोठी के बाहर मुस्तैद खड़ा था, तभी किसी बच्चे के रोने की आवाज सुनाई दी। वह सड़क पर निकलकर इधर-उधर देखने लगा। सामने से एक छोटा बच्चा भागता हुआ उसकी तरफ आया। उम्र यही होगी चार साल। चौकीदार की समझ में नहीं आया कि उतनी रात गए बच्चा कहाँ से आया था, किसका था? क्योंकि उस सड़क की कोठियों में रहनेवाले सभी बच्चों को वह खूब पहचानता था। उसने बच्चे को पुचकारा, नाम-पता पूछा। माँ-बाप का नाम जानना चाहा, लेकिन बच्चा था कि बस, रोए जा रहा था। चौकीदार जो कुछ पूछता, उसके जवाब में बच्चा छोटी-सी हथेली ऊपर की

ओर उठा देता।

क्या वह यह बता रहा था कि उसके माँ-बाप आसमान में रहते हैं ? चौकीदार पूछ-पूछकर थक गया और बच्चा थककर सो गया, वहीं सड़क पर।

चौकीदार चक्कर में था कि अनजान बच्चे का क्या करे—इसी सोच में रात बीत गई। बच्चा सड़क पर सोता रहा।

अगले दिन चौकीदार उसे लेकर इधर-उधर पूछता फिरा, बच्चे से जानना चाहा, लेकिन कुछ भी पता न चला। पुलिसवालों से वैसे ही घबराता था चौकीदार। दिन में बच्चा चायवाले के पास बैठा खाता-पीता रहा। आनेवाले उसकी भोली सूरत देख मुसकराते तो वह भी हँस देता। पूरे दिन उसी की चर्चा रही।

चौकीदार दिन में किसी दफ्तर में नौकरी करता था। दिन में वह बच्चे की बात एक तरह से भूल ही गया था, शाम को लौटते हुए उसे बच्चे की याद आई थी, और वह घबरा उठा था। दूर से ही उसने चायवाले की दुकान पर हँसते-खिलखिलाते बच्चे को देख लिया था।

देखते ही हाथ का बिस्किट छोड़कर बच्चा दौड़ता आया था और उससे लिपट गया था। चायवाले ने भी पुकारकर कहा था—"लो भई, सँभालो अपनी अमानत को।" ऐसा लगता था जैसे बच्चा उसी को सौंप दिया

गया हो।

बच्चे का हाथ थामकर चौकीदार उसे अपनी गुमटी में ले आया था, फिर सोच में डूब गया था। बार-बार यही विचार आ रहा था—यह अच्छी मुसीबत गले पड़ी। कहाँ रखूँगा इसे। मेरे घर में भी तो बच्चे हैं। कैसे क्या होगा?

लेकिन बच्चे को लेकर चौकीदार को ज्यादा चिंता नहीं करनी पड़ी थी। रात में वह कहीं भी सो जाता, दिन में इधर-उधर घूम-फिर, खा-पी लेता। कभी-कभी पेड़ पर चढ़कर परिंदों के सुर में सुर मिलाकर तरह-तरह की आवाजें निकालता।

चौकीदार तो क्या, अब किसी को भी उसकी चिंता करने की जरूरत नहीं रह गई थी। जैसे सड़क पर पेड़ों ने अपनी जगह बना ली थी, जैसे तरह-तरह के पंछियों ने पेड़ों पर अपने घोंसले बना लिए थे—उसी तरह बच्चा भी वहीं का हो गया था। इसी बीच न जाने कैसे उसका नाम जानू पड़ गया था।

मोड़ पर खड़े नीम के बड़े पेड़ के नीचे जानू ने अपना घर बना लिया था—इस बात को कई बरस बीत गए थे।

अगले दिन की चिंता करते-करते कब नींद आ गई, जानू को खबर न हुई। एकाएक वह हड़बड़ाकर उठ बैठा।

चारों ओर धुँधला उजाला फैला था। पेड़ों पर पंछियों की चहचहाहट गूँज रही थी। सामने ही सड़क पर काम करनेवाली बड़ी और बेडौल मशीनें खड़ी थीं। अभी पेड़ काटनेवाले नहीं आए थे। लेकिन चायवाला आ गया था। उसने अँगीठी जला ली थी। काला धुआँ फैल रहा था। जबसे सड़क पर काम शुरू हुआ था, भीमसिंह की चाय की दुकान बहुत जल्दी खुल जाती थी। सड़क बनानेवाले मजदूर तथा दूसरे कर्मचारी जल्दी आकर

चाय जो पीते थे।

इसी बात को लेकर जानू भीमसिंह से नाराज रहता था। वह चाहता था कि भीमसिंह सड़क बनानेवालों को चाय न पिलाए, कोई चीज़ न दे। ये दुश्मन थे जानू के। उसका पेड़ जो काटना चाहते थे। लेकिन उसने भीमसिंह से कभी कहा नहीं, कहेगा तो भीमसिंह उसका मज़ाक उड़ाएगा, इसे अच्छी तरह जानता था जानू।

भीमसिंह से सुबह उसे एक चाय मिलती थी, पर उसने आज नहीं ली। सचमुच बिल्कुल मन नहीं था। वह पेड़ की डालियों से लटकते अपने सामान को देख रहा था।

एक बार मन में आया कि कहीं चला जाए और शाम तक न लौटे। हो सकता है, इस तरह पेड़ कटने से बच जाए, क्योंकि उसका सामान लटकता देखकर पेड़ काटनेवालों को सोचना पड़ेगा। आखिर किसी का सामान उठाकर यों ही तो सड़क पर नहीं फेंका जा सकता।

लेकिन जानू का सोचना किसी काम न आया। आते ही दो आदमी पेड़ पर चढ़ गए और डालियाँ काटने लगे। अब जानू से न रहा गया। उसने झपटकर अपना सामान पेड़ से उतारा और भागकर चौकीदार चाचा की गुमटी में रख आया।

पेड़ की डालियाँ और हरे पत्ते कट-कटकर नीचे गिरने लगे थे। पेड़ पर बैठे पंछी उड़-उड़कर इधर-उधर जाने लगे। पत्ते बुरी तरह काँप रहे थे। जैसे डर रहे हों। जानू बेबस-सा एक तरफ खड़ा था। खड़े-खड़े घबराहट हुई तो बैठ गया। सिर में चक्कर आ रहा था। तभी धप्प की आवाज हुई—तो घोंसला नीचे आ गिरा। जानू भागकर नजदीक गया। हाय रे, एक-दो अंडे गिरते ही फूट गए थे—घास-फूस के बीच दो नन्हें-नन्हें जीव, जिनका सारा शरीर लाल-लाल दिखाई दे रहा था, चोंच खोले चीं-चीं कर रहे थे।

जानू की निगाहें घोंसले से नहीं हट पा रही थीं। अक्सर वह पंछियों को चोंच में तिनके दबाए इधर से उधर उड़ते हुए देखता था। कितनी मेहनत से घर बनाते हैं, लेकिन तोड़नेवालों ने जरा-सी देर में घोंसला नोचकर फेंक दिया। एक बार भी नहीं सोचा कि घोंसले में बैठे नन्हें पंछियों का क्या होगा।

चारों ओर मशीनों की आवाज गूँजने लगी थी। पेड़ की डालियाँ कट गई थीं। अब चार जने तने पर कुल्हाड़े चला रहे थे।

जानू को लगा, कुल्हाड़े पेड़ पर नहीं खुद उसके शरीर पर चलाए जा रहे हों। उसने आँखें फेर लीं और जमीन पर पड़े घोंसले को देखने लगा। उसे उम्मीद थी

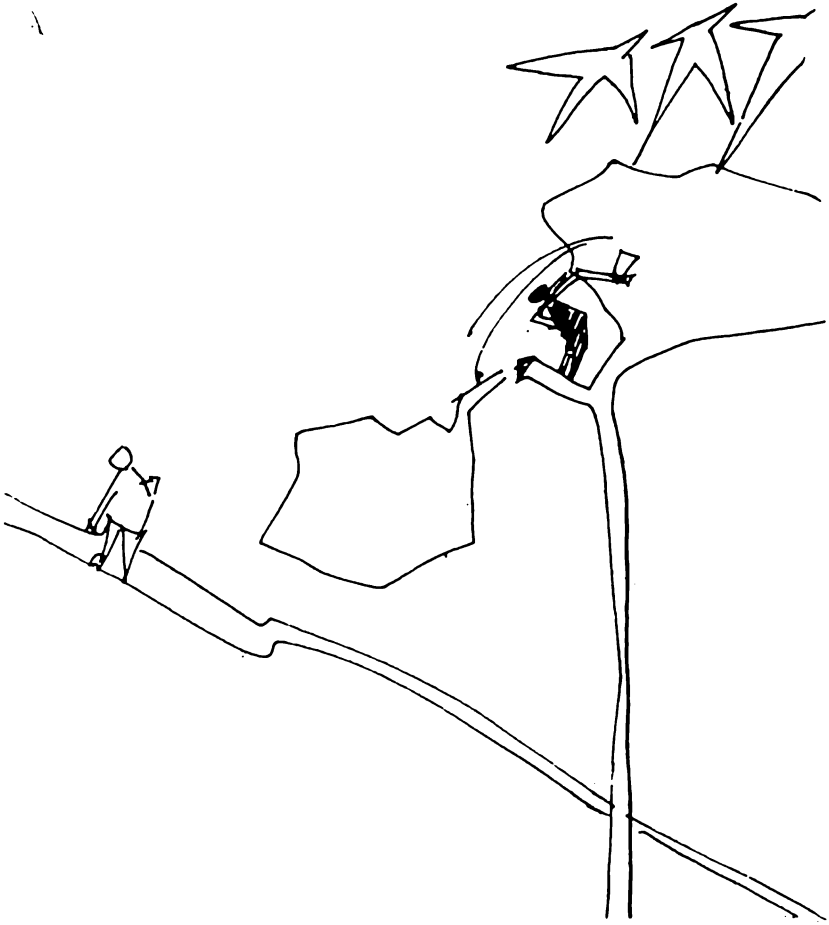

कि थोड़ी देर में नन्हें पंछी पंख फैलाकर उड़ जाएँगे। लेकिन फिर ध्यान आया कि उनके पंख तो थे ही नहीं। वे उड़ नहीं सकते थे। वह वहीं खड़ा रहा, जा न सका। एक बार मन हुआ कि टूटे घोंसले को उठाकर चौकीदार चाचा की गुमटी में रख दे। लेकिन फिर बढ़ते हाथ रुक गए।

उसका अपना ही ठिकाना नहीं था अब तो। आखिर वह हमेशा तो चौकीदार चाचा पर बोझ बनकर नहीं रह सकता था। उसने चारों ओर देखा। किसी का ध्यान उसकी तरफ नहीं था। जैसे जानू उनके लिए था ही नहीं। काम करनेवाले अपने ध्यान में मस्त आ-जा रहे थे। एक-दो बार तो घोंसले पर पैर पड़ता-पड़ता रह गया था।

जानू ने झुककर सावधानी से घोंसले को उठा लिया। उसके उठाते ही नन्हें पंछियों ने चिल्लाना बंद कर दिया। अब वे नुकीली पीली चोंच खोले हाँफ रहे थे। ऊपर आकाश में अनेक पंछी उड़ रहे थे। जानू कुछ पल ऊपर देखता रहा जैसे यह पहचानने की कोशिश कर रहा हो कि इन नन्हें पंछियों के माँ-बाप कौन थे उनमें।

जानू घोंसला उठाकर फुटपाथ पर चला आया। देखा पीछेवाले बँगले की चाहरदीवारी में ईंटों की जालियाँ बनी हुई हैं। उसने डरते हुए अंदर झाँका। कहीं कोई नहीं था। फिर तेज धड़कते दिल से घोंसले को ईंटों की जाली में रख दिया। घोंसला बिल्कुल ठीक समा गया था उस जगह में। अब गिरने का खतरा नहीं था। समस्या एक ही थी—नन्हें पंछियों के माँ-बाप को कैसे पता लगेगा कि उनके बच्चे यहाँ हैं।

तभी उसने घोंसले को हिलते हुए महसूस किया।

ध्यान से देखा तो अंदर की तरफ एक बच्चा खड़ा नजर आया। वही छेड़ रहा था घोंसले को। जानू ने कहा—"अरे भैया, मत छुओ, मैंने इसे सड़क से उठाकर रखा है। रखा रहने दो न।"

"कोठी हमारी है न—इसलिए इनमें से एक बच्चा मैं लूँगा!"

"ले लेना—लेकिन जरा बड़े तो हो जाएँ। अभी तो ये भूखे होंगे। यहाँ से तो घोंसला गिर भी सकता है। पेड़ से गिरने पर कई अंडे फूट गए। जिस पेड़ पर घोंसला था, वह कट गया।" कहते-कहते उसकी नजर कोठी के अंदर लॉन में खड़े पेड़ों पर टिक गई। सोचा—कितने सुखी हैं यहाँ के पेड़, इन्हें कटने का डर नहीं।

अंदर खड़े लड़के ने कहा—"ऐसा करो—मैं दरवाजा खोलता हूँ, अंदर आ जाओ। हमारे लॉन में बहुत सारे पेड़ हैं। किसी पर भी रख देना।"

जानू खुशी से उछल पड़ा। कोठीवाले लड़के ने उसके मन की बात समझ ली थी। बोला—"अब बन गई बात।"

कोठीवाले लड़के का नाम अजीत था।

वह घोंसले को उठाकर डरता-सा खुले दरवाजे से अंदर चला गया। चारों ओर हरी घास पर रंग-बिरंगे फूल खिले थे। उसने दरवाजे से दूर एक पेड़ को

देखा—वह दूसरे पेड़ों से जरा नीचा था। उस पर आसानी से चढ़ा जा सकता था। घोंसले अजीत को सौंपकर वह जल्दी-जल्दी पेड़ पर चढ़ गया। फिर घोंसला दो डालों पर टिका दिया। पत्तों के बीच होने से अब गिरने का खतरा नहीं था। पेड़ से उतरकर उसने संतोष की साँस ली। उसका अपना पेड़ भले ही कट गया लेकिन बेचारे परिंदों के लिए प्रबंध हो ही गया था।

जानू ने अजीत से पूछा—"क्या मैं देखने के लिए आ सकता हूँ, कभी-कभी ?"

अजीत ने जानू को सिर से पैर तक देखा। दोनों की नजरें मिलीं तो जानू को लगा जैसे वह नंगा हो। अजीत ने सफेद कमीज और सफेद पैंट पहन रखी थी। पैरों में मोजे और सफेद जूते। उसके शरीर से महक आ रही थी—बड़ी अच्छी सुगंध।

जानू ने वही फटी हुई कमीज और पाजामा पहन रखा था जिन्हें वह हफ्ते में एक बार धो पाता था। उसके कान गरम हो गए। मन हुआ, अभी भाग जाए, लेकिन उसने अपना घोंसला अजीत की कोठी के पेड़ पर रख दिया था। अगर वह जानू को कोठी में घुसने से मना कर दे तो—इसलिए चुप खड़ा रहा।

अजीत ने जानू के प्रश्न का जवाब दिया—"हाँ, कभी-कभी आ सकते हो, लेकिन रोज नहीं। पापा देख

लेंगे तो मारेंगे—अरे लो, वह तो आ भी गए।"

जानू ने देखा, एक चमचमाती कार दरवाजे से भीतर घुसी और वहीं रुक गई, जहाँ ये दोनों खड़े थे। जानू की तो साँस ही रुकने लगी। सारे बदन पर पसीना आ गया।

कारवाले साहब ने घूरकर जानू की तरफ देखा। तभी अजीत बोला—"पापा, यह लड़का सड़क पर रहता है। इसका पेड़ कट गया। उस पर से घोंसला गिरा था, सो मैंने अपने पेड़ पर रखवा दिया है। हमारी कोठी में तो बहुत सारे पेड़ हैं। ये तो कभी नहीं कटेंगे न?"

साहब ने एक बार पेड़ की तरफ देखा, फिर दरवाजे की ओर इशारा करके जानू से बोले, "भागो।"

इसके बाद और क्या कहा गया यह जानू को याद नहीं, क्योंकि वह तुरंत दरवाजे की ओर दौड़ पड़ा था और काफी दूर तक भागता चला गया था। हर तरफ से एक ही आवाज आ रही थी—"भागो।" और वह दौड़ता जा रहा था।

जानू काफी देर से अजीत की कोठी के बाहरवाले पेड़ पर चढ़ा हुआ था। वहाँ से वह अपनी आँखें उस पेड़ तक पहुँचाना चाहता था जिस पर घोंसला रखा था। लेकिन बहुत कोशिश करने पर भी हवा में हिलते पत्तों के अलावा वह और कुछ भी नहीं देख सका।

तीन-चार दिन में बहुत कुछ हो गया था। उसका पेड़ जड़ से खोदा जा चुका था। वहाँ सड़क बन गई थी। मशीनें और मजदूर चले गए थे। उसका सामान चौकीदार चाचा की गुमटी में था। जहाँ था, वहीं पड़ा था। उसने बाजार से गुजरते हुए कई जगह लोहे के बेकार टुकड़े, खाली शीशियाँ, तसवीरें देखी थीं लेकिन उठाने का मन न हुआ। क्या करेगा उठाकर? कहाँ रखेगा अब? कल को चौकीदार चाचा भी उससे जाने को कह सकते हैं।

भीमसिंह चायवाले ने दूसरे पेड़ के नीचे अपनी चाय की दुकान जमा ली थी, लेकिन जानू ने किसी दूसरे पेड़ को अपना साथी नहीं बनाया। यह कैसे हो सकता था भला। क्या हर आदमी उसका दोस्त हो सकता है? क्या हर पेड़ उसका आसरा बन सकता है? वह जब जहाँ चाहता सो लेता था—अक्सर तो वह कोठी नंबर ग्यारह के बाहर ही फुटपाथ पर सो जाता था। इसी कोठी में तो वह पेड़ था जिस पर उसने घोंसला रखा था।

कई बार अजीत ने कोठी के अंदर से उसे इशारा किया था, और जानू के कदम उस तरफ बढ़े भी थे, पर हर बार कानों में 'भागो' की आवाज गूँजने लगती थी और वह वापस हो लेता था। उसने मन ही मन फैसला कर लिया था कि वह उस कोठी में कभी नहीं जाएगा।

लेकिन जब फुटपाथ के पेड़ पर घंटों बैठे रहकर भी अंदर का कुछ पता नहीं चला तो उसका निश्चय कमजोर पड़ने लगा। और एक रोज, दोपहर को जब अजीत ने उसे इशारे से बुलाया तो वह धीरे-धीरे सहमते कदमों से अंदर जा पहुँचा।

अजीत ने कहा—"यार, जरा ऊपर चढ़कर तो देख, मुझे तो चढ़ना आता ही नहीं।"

जानू तुरंत पेड़ पर चढ़ गया, उसके चढ़ते ही एक चिड़िया घोंसला छोड़कर उड़ गई, लेकिन कहीं गई नहीं, पेड़ पर ही मँडराती रही। जानू को लगा शायद यही चिड़िया उन बच्चों की माँ थी, यानी उसने अपने खोए बच्चों को पा लिया था।

वह संतुष्ट होकर नीचे उतर आया। अजीत भी उसके साथ-साथ कोठी से बाहर आ गया। उस दिन अजीत के पिता नहीं दिखाई दिए थे।

अगले रोज सुबह चौकीदार चाचा ने भीमसिंह से चाय मँगवाई थी। वह चाय का गिलास थामे चला आ रहा था, तभी उसने अजीत को कोठी से बाहर निकलते देखा। सफेद कपड़ों में सजा अजीत उसे अच्छा लगा। उसके कंधे पर नीले रंग का बस्ता लटका हुआ था। बस्ते पर सफेद रंग के उछलते हुए खरगोश का चित्र बना हुआ था। जानू के कदम अपनी जगह रुक गए। वह दूर जाते

हुए अजीत को देखता रहा। अजीत चला गया, पर जानू खड़ा रहा। हवा में उछलता हुआ खरगोश उसे अब भी दिखाई दे रहा था, जो धीरे-धीरे बड़ा होता जा रहा था—खरगोश कभी अजीत बन जाता, कभी फिर खरगोश बनकर उछलने लगता।

जानू बहुत देर तक चाय का गिलास थामे वहीं खड़ा रह गया। उसका मन बहुत तेजी से दौड़ रहा था। सोच रहा था—अजीत अच्छा लड़का है। कपड़े कितने सफेद हैं, और खरगोशवाला बस्ता कितना सुंदर। कितनी किताबें होंगी, तरह-तरह की रंगीन किताबें, लेकिन मुझे तो पढ़ना ही नहीं आता। फिर भी तसवीरें तो देख सकता हूँ। बहुत-सी चीजों को देखकर ही पता लग जाता है, पढ़ने की जरूरत नहीं होती। क्या रोटी पर रोटी लिखा होता है? उस दिन चायवाला बता रहा था कि मनुष्य चाँद पर पहुँच गया और यह सब किताबों में लिखा है। लेकिन चाँद पर आदमी कैसे चला होगा? चाँद तो रोटी की तरह है। क्या रोटी पर भी चल सकता है कोई? लेकिन अगर चल सके तो खूब मजा आए। जानू मन ही मन सोचने लगा—वह एक मैदान में खड़ा है—सामने एक बहुत बड़ी रोटी कालीन की तरह बिछी है। सोंधी महक उठ रही है और उठ रहे हैं भाप के बादल। वह देखता रहता है, फिर झुककर रोटी का टुकड़ा तोड़कर मुँह में रख

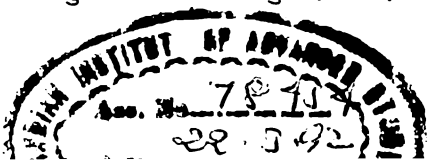

लेता है। आह, कितना मीठा-मीठा स्वाद, उसने ऐसी रोटी तो कभी नहीं खाई।

एकाएक चौकीदार चाचा की आवाज सुनाई दी– "जानू, कहाँ चला गया ?" जानू चौंक उठा। उसके सारे सपने खो गए।

वह गिलास थामे बढ़ चला, लेकिन मन ही मन निश्चय कर चुका था कि एक दिन अजीत से कहकर उसके बस्ते पर बना खरगोश जरूर छूकर देखेगा। और अगर वह मान गया तो किताबें भी उलट-पलट लेगा।

अजीत से पूछेगा कि पढ़ना कैसे सीखा जा सकता है। लेकिन कौन पढ़ाएगा उसे, वह स्कूल तो जा नहीं सकता।

उस दिन पूरे समय जानू के दिमाग में यही बातें चक्कर काटती रहीं। दोपहर को उसने पासवाली बस्ती में पचास पैसे की मजदूरी की थी। लौटकर अठन्नी चौकीदार चाचा को सौंप दी तो वह हँसने लगे। उसकी पीठ थपथपाई, सिर सहलाया और अपने साथ खाना खिलाया। चौकीदार चाचा उसे कभी-कभी अपने साथ खाने को कह देते थे। लेकिन जानू खुद उनसे कभी नहीं कहता था। यही बहुत था कि उन्होंने जानू का सामान अपनी गुमटी में रखा हुआ है।

शाम को अजीत स्कूल से आया तो जानू गेट के बाहर खड़ा था। अजीत उसे देखकर हँसा तो जानू भी हँस दिया। अजीत ने पूछा—"अंदर चलोगे ?" जानू तो यही चाहता था। वह पीछे-पीछे चल दिया। नजरें अजीत की पीठ पर लटके बस्ते पर टिकी थीं। वही खरगोश हवा में उछल रहा था···

उस पेड़ से चहकने की आवाजें आ रही थीं। एक भूरे रंग का पंछी पेड़ से उड़कर कहीं जाता और फिर लौट आता। वह संतुष्ट होकर लौट आया। एक बार मन हुआ कि बस्ते के बारे में पूछे, लेकिन फिर चुप हो गया। उसे

डर लगा कि कहीं इस बीच अजीत के पिता जी न आ जाएँ।

हर सुबह जब अजीत स्कूल जाता, तो जानू गुमटी के बाहर आकर खड़ा हो जाता। अजीत बड़ी सड़क से स्कूल बस में बैठकर जाता था। कभी-कभी अजीत के दो दोस्त उसे लेने आते थे। वे अजीत से बहुत बड़े दिखाई देते थे। उसी की तरह झकझक सफेद कपड़े पहने होते थे।

अजीत कभी जानू की ओर देखता, कुछ हँसता, तो कभी बिना देखे ही निकल जाता था, लेकिन जानू उसकी पीठ पर लटके खरगोशवाले बस्ते को जरूर देखा करता था।

एक सुबह हर रोज की तरह वह कोठी के दरवाजें से थोड़ी दूर पर खड़ा था। अजीत बस्ता लेकर कोठी से निकला। साथ में उसके दोस्त भी थे। वे एक तरफ खड़े होकर बातें करते रहे, साथ-साथ कुछ दूर गए, फिर लौट आए। अजीत से जानू की नजरें मिलीं तो वह हँस पड़ा। अजीत भी मुसकराया, फिर बढ़कर पास आ खड़ा हुआ।

मामला जानू की समझ में नहीं आया। उसने जमीन की ओर देखा तो अजीत ने आँखें झुका लीं, फिर बस्ता कंधे से उतारकर जानू के पैरों के पास रख दिया।

जानू ने देखा, वही उछलते खरगोशवाला बस्ता था, किताबों से भरा हुआ। तो क्या अजीत ने मेरे मन की बात

इतनी जल्दी समझ ली, और बस्ता दे दिया देखने-पढ़ने के लिए ? पढ़ने की बात सोचकर उसे दुख हुआ। उसने पढ़ना सीखा ही नहीं था।

उसे सोच में डूबा देख अजीत जोर से बोला, "अबे, देख क्या रहा है। अभी आता हूँ, कहीं काम से जा रहा हूँ। आकर बस्ता ले लूँगा। खबरदार, बस्ते को कोई देखने न पाए, अच्छी तरह छिपाकर रखना। आकर टाफियाँ दूँगा।" इतना कहकर अजीत और उसके दोस्त तेजी से एक तरफ चले गए। जानू ने देखा, आगे दो लड़के और खड़े थे।

बस्ता उसे सौंपकर अजीत कहाँ चला गया, यह बात जानू की समझ में एकदम नहीं आ रही थी—लेकिन इस समय वह ज्यादा सोचना चाहता भी नहीं था। उसने बस्ता उठाया और चौकीदार चाचा की गुमटी में चला आया। वहाँ आराम से बैठकर देखना चाहता था।

धीरे से बस्ते पर बने खरगोश को छुआ, तो हथेली में गुदगुदाहट होने लगी। फिर डरते-डरते एक किताब निकाली, उलट-पलटकर देखी। वाह, कितना अच्छा कागज है। कैसी-कैसी रंगीन तसवीरें थीं—एक बार देखकर रख देता, फिर निकाल लेता। कई-कई बार देखकर भी मन नहीं भरा था। बीच में एक बार चौकीदार चाचा आए, तो उसने बस्ते को अपने पीछे

छिपा दिया। अजीत ने यही तो कहा था कि किसी से कुछ कहना मत। लेकिन रंगबिरंगी तसवीरें देखने से थोड़े रोका था उसने। चौकीदार चाचा चले गए तो वह फिर किताबें उलटने-पलटने लगा। किताबें देखकर मन में हूक-सी उठने लगी, अगर किताबों को पढ़ पाता, तो कितना मजा आता।

थोड़ी देर बाद उसने बस्ता बंद कर दिया और गुमटी के बाहर खड़ा हो गया। दिन ढलने लगा था लेकिन अजीत अभी तक नहीं आया था। फिर सोचा ऐसा तो नहीं कि आकर कोठी में चला गया हो। एक बार मन हुआ कि बस्ता कोठी में जाकर दे आए। पर अजीत के पिता का ध्यान आते ही काँप गया। थोड़ी देर बाद अजीत भागता हुआ आया और बस्ता छीनकर तेजी से कोठी की तरफ चला गया। जानू हैरानी से देखता रह गया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि बस्ता उसके पास छोड़कर अजीत अपने दोस्तों के साथ कहाँ गया होगा। हाँ, यह बात जरूर समझ में आ गई थी कि चाहे और कहीं भी गया हो पर बिना बस्ते के स्कूल तो नहीं जा सकता था कम से कम।

इसके बाद दो-तीन बार फिर ऐसा ही हुआ। सुबह स्कूल के समय पर अजीत कोठी से बाहर निकलता, उसके दोस्त आते और वह बस्ता जानू को सौंपकर दोस्तों

के साथ जाने कहाँ चला जाता। अजीत की यह आदत जानू को एकदम बुरी लगती थी, लेकिन वह भला क्या कर सकता था। अजीत का उस पर अहसान था। उसने जानू की चिड़ियों को अपनी कोठी के पेड़ पर जगह दे रखी थी। यह बात तो कभी नहीं भूल सकता था जानू। लेकिन इतना वह जरूर समझ गया था कि अजीत के साथी अच्छे नहीं। वे उसे गलत रास्ते पर ले जा रहे हैं शायद! अगर कोई जानू को पढ़ाता तो वह रात-दिन पढ़ता रहता। एक अजीत है कि हर आराम होते हुए भी पढ़ने से जी चुराता है।

उस दिन शाम को वह अजीत का बस्ता लिए कोठी के बाहर खड़ा था इंतजार में। तभी अजीत के पापा अंदर से निकल आए। शायद उस रोज वह घर पर ही थे। उन्हें देखते ही जानू के कदम जैसे जमीन से चिपक गए। उसने बस्ता छिपाना चाहा, पर अजीत के पापा ने देख लिया था। उन्होंने झपट्टा मारकर बस्ता उसके हाथ से छीन लिया, फिर चिल्लाकर बोले—"क्यों बे! अजीत का बस्ता कहाँ से उड़ाया! बोल जल्दी, वरना अभी पुलिस में दे दूँगा।"

क्या बोलता जानू! मारे डर के उसके गले से आवाज ही नहीं निकल रही थी। पूरा शरीर काँप रहा था। अच्छी दोस्ती निभाई अजीत ने। मन में आया कह दे, 'मैं

चोर नहीं हूँ। चोर होगा कोई और। आपको क्या पता कि अजीत कई रोज से इसी तरह बस्ता मुझे देकर न जाने कहाँ चला जाता है!' लेकिन वह एकदम कुछ बोल नहीं पाया। बस, सिर झुकाए खड़ा रहा। तभी उसने अजीत को आते देखा। वह तेजी से बढ़ा आ रहा था, लेकिन पिता और जानू को बातचीत करते देख समझ गया कि उसका भेद खुल गया है, उसके बढ़ते कदम थम गए। वह वापस जाने को मुड़ा पर उसके पापा की नजर उस पर पड़ चुकी थी। उन्होंने पुकार लिया, "अजीत, यहाँ आओ, तुम्हारा बस्ता इस लड़के के पास कैसे आ गया? बस्ता चोरी जाने की बात तुमने अब तक मुझे क्यों नहीं बताई।"

अजीत को उनके सामने आना पड़ा। उसने खा जानेवाली नजरों से जानू को देखा, जैसे कह रहा हो, 'समझ लूँगा बच्चू। तूने पापा से क्यों कहा!' फिर उसका दिमाग कोई बहाना सोचने में व्यस्त हो गया। एकाएक उसकी आँखें चमक उठीं। रोनी सूरत बनाकर बोला, "पापा, उस समय आप थे नहीं। मेरा एक दोस्त सड़क दुर्घटना में घायल हो गया था। बस, इसे बस्ता पकड़ाकर मैं सीधा अस्पताल चला गया था। अब वहीं से आ रहा हूँ। हालत बहुत खराब है बेचारे की। मैंने इसे सबकुछ समझा दिया था। क्या इसने आपको नहीं बताया?"

अजीत के पापा ने धीरे से अजीत के बाल सहला दिए। बोले—"बहुत थक गए होगे। जाओ, अंदर जाकर कुछ खा-पी लो।" फिर जानू को कडी नजर से देखकर कोठी में जाने के लिए मुड़ गए।

जानू की नजरें दोनों की पीठ पर जम गईं। हरी घास के बीच बिछी लाल बजरी पर दोनों चले जा रहे थे। अजीत रह-रहकर उछलता था किसी खरगोश की तरह। लेकिन वह खरगोश नहीं, अजीत था, झूठा कहीं का। अपने को बचाने के लिए उसने जानू को बेकसूर फँसा दिया था। अपमान और पीड़ा से जानू की आँखें भर

आईं। फिर उसकी नजरें कोठी के लॉन में लगे पेड़ पर जा टिकीं—उसका अपना पेड़, हाँ उसी पर तो था उसका घोंसला। हवा में हरे-भरे पत्ते धीरे-धीरे हिल रहे थे, जैसे जानू को अपने पास बुला रहे हों। पेड़ के चारों ओर कुछ पंछी मँडरा रहे थे, वह दिलचस्पी से देखता रहा। हाँ, इन्हीं में तो हैं उसके अपने साथी—नन्हें पंछी। अब तो काफी बड़े हो गए होंगे। इतने बड़े कि वह देखेगा तो पहचान भी नहीं पाएगा। और पंछी ही उसे कहाँ पहचानेंगे। या पहचान भी लें तो उसे क्या पता चलेगा। बेचारे चीं-चीं करने के अलावा और तो कुछ बोल नहीं सकते। यह सोचते-सोचते जानू के उदास होंठों पर मुसकान आ गई। वह खुलकर मुसकराया और मुड़ गया। उसकी पीड़ा कम होती जा रही थी।

कई दिन यूँ ही बीत गए। अजीत रोज सुबह जाता था, जानू उसे देखता था, पर दोनों बातें नहीं करते थे। अजीत के साथ उसके लंबे-तड़ंगे मित्र भी दिखाई पड़ते थे। जानू को लगता था, अब अजीत उससे बात नहीं कर सकेगा। आखिर उसने झूठ जो बोला था। सिर्फ झूठ तक ही रहता तब भी कोई बात नहीं थी, लेकिन कल शाम उसने बाजार में अजीत को पनवाड़ी की दुकान पर सिग्रेट पीते हुए भी देखा था अपने दोस्तों के साथ।

जानू पर नजर पड़ते ही अजीत एक तरफ चला गया था, इसलिए जानू भी नहीं रुका वहाँ, पर सिग्रेट पीते अजीत की छवि बार-बार उसकी आँखों में तैर जाती थी। उसे लगता था जैसे अजीत का चेहरा सिग्रेट के कड़वे धुएँ में छिप गया है, सिग्रेट के धुएँ से उसे खुद भी खाँसी आने लगती थी। क्यों सिग्रेट पीता है अजीत ? एक रोज भीमसिंह चायवाले ने हँसी-हँसी में उसे अपनी बीड़ी पिला दी थी। एक कश खींचते ही उसका कलेजा सुलग उठा था। आँखों से खूब पानी निकला था—खाँसते-खाँसते बुरा हाल हो गया था, उसने बीड़ी फेंक दी थी और काफी दिनों तक गुस्से के कारण भीमसिंह से नहीं बोला था। अजीत से कौन जबरदस्ती करता था ? उसके दोस्त, या फिर वह खुद ही पीने लगा था ? इतने अच्छे मकान में रहता है, घर में मोटरकार, नौकर-चाकर सबकुछ हैं, फिर उसे बुरी आदतें क्यों पड़ गईं ! क्या इस बारे में भी अजीत के पिता को कुछ मालूम है कि उनका बेटा किस रास्ते पर जा रहा है ?

और इस दोपहर को जानू के पैर अजीत के स्कूल की तरफ उठ गए थे। वह स्कूल के दरवाजे पर जा खड़ा हुआ। स्कूल के लॉन में बच्चे उछल-कूद मचा रहे थे। हवा में हँसी तैर रही थी, फिर भी अंदर जाने की हिम्मत नहीं हुई उसकी। वह स्कूल में कैसे जा सकता है। न

उसके बदन पर स्कूल की पोशाक है, न खरगोशवाला बस्ता और न ही फूलों और तसवीरोंवाली सुंदर किंताबें। नहीं, नहीं, वह अंदर नहीं जा सकता। वहाँ के वातावरण में वह अपने को एकदम अजनबी महसूस कर रहा था। खड़ा-खड़ा लोहे के सरियोंवाले ऊँचे दरवाजों के आर-पार देखता रहा। तभी अजीत दिखाई पड़ गया और दोनों की नजरें मिल गईं। जानू कुछ मुसकराया, लेकिन अजीत का चेहरा वैसा ही रहा। वह एक पल कुछ झिझका, फिर बाहर आकर उसके सामने खड़ा हो गया।

जानू को लगा, अजीत को उसका वहाँ आना अच्छा नहीं लगा है। उसने अपने अंदर कुछ हिम्मत बाँधी फिर बोला—"अजीत, कैसे हो? तुमसे एक बात कहनी है। तुमने अपने बाबूजी से झूठ क्यों कहा? क्या सचमुच तुम्हारा कोई दोस्त घायल हो गया था! तुमने मुझ से तो नहीं कहा था। और तुम सिग्रेट क्यों पीने लगे हो? यह तो बुरी बात है।"

जानू कह रहा था और अजीत का चेहरा गुस्से से लाल होता जा रहा था। वह जोर से चीखा—"स्साला, भिखारी, मुँह तोड़ के रख दूँगा! खबरदार, जो अब कभी हमारे घर की तरफ आया।"

जानू का मन धक्क् से रह गया। अजीत उस पर इस तरह चिल्लाएगा, यह तो उसने कल्पना भी नहीं की थी।

अजीत की चिल्लाहट तो उसके पापा से भी तेज है। जानू सहमकर पीछे हट गया। तभी अजीत के दोस्त उस तरफ आते दिखाई दिए। वही जिनके साथ वह घूमने जाता था, सिग्रेट पीता था। जानू समझ गया कि अगर अब यहाँ रुका तो उसे मार खानी पड़ेगी—वह मुड़कर तेज कदमों से वहाँ से भाग लिया। पीछे से गालियाँ सुनाई दीं। अजीत और उसके दोस्त चीख-चिल्ला रहे थे, उनकी गालियाँ कानों में चुभ रही थीं। जानू के कदम उसे भगाए लिए जा रहे थे। वह सोच रहा था—सब खत्म हो गया, अब अजीत से कभी नहीं मिल सकेगा—और जब यह विचार उसके मन में आता था, तो उसे दुख होता था। क्योंकि इसका मतलब था कि अजीत की कोठी में पेड़ पर रखे घोंसले को वह नहीं देख पाएगा। और उसके मन में कुछ होने लगता था। लेकिन दोपहर बाद ही अजीत फिर दिखाई दे गया उसे।

जानू स्टेशन से किसी मुसाफिर का संदूक बड़े बाजार में छोड़कर लौट रहा था। एक रुपया मिला था। उसने सुबह से कुछ नहीं खाया था। रुपया जेब में आने के बाद भूख ज्यादा तेज हो गई थी पर जानू रुपए को खर्च नहीं करना चाहता था। उसने कई दिन से चौकीदार चाचा को कुछ भी कमाकर नहीं दिया था। बेचारे इतने अच्छे थे

कि उसे भरपेट खाना खिलाते थे। चाय भी मिल जाती थी।

सड़क के दोनों ओर खाने-पीने की चीजें सजाकर बैठे खोमचे वालों की भीड़ थी। जानू की उँगलियाँ जेब में पड़े रुपए के सिक्के से खिलवाड़ कर रही थीं और आँखों से इधर-उधर देखता थके कदमों से बढ़ा जा रहा था। तभी उसे अजीत फिर दिखाई दिया। स्कूल की पोशाक और कमर पर वही उछलते खरगोशवाला बस्ता। जानू अजीत से थोड़ा पीछे था। एकाएक बस्ते पर बने खरगोश से उसने अजीत को पहचान लिया था। अजीत ध्यान सें दुकानों में देखता हुआ धीरे-धीरे बढ़ रहा था। जानू की चाल और भी धीमी हो गई। वह अजीत से मिलना नहीं चाहता था। स्कूल में खाई गालियों से पेट अब तक भरा हुआ था लेकिन···

एकाएक अजीत न जाने कहाँ चला गया। जानू इधर-उधर नजरें दौड़ाने लगा। उसे ताज्जुब हो रहा था। शाम ढलने लगी थी। पश्चिम में आकाश एकदम लाल-लाल दिखाई दे रहा था। हवा में मँडराते पंछियों का शोर बढ़ गया था। बाजार के कोनेवाले पेड़ पर काफ़ी परिंदे एक साथ उतर रहे थे। क्या वे पंछी भी हो सकते हैं इनमें ? जानू ने सोचा, फिर अपने विचार पर खुद ही हँस पड़ा। उसे घोंसला, पेड़, पंछी, खरगोश—इन

बातों के अलावा और कुछ सूझता ही नहीं। लेकिन अजीत···वह कहाँ गायब हो गया!

अजीत जैसे गायब हुआ था एकाएक उसी तरह प्रकट भी हो गया—वह एक दुकान से निकला था, पर वह खरगोश नहीं दिखाई दे रहा था। खरगोशवाला बस्ता अजीत की पीठ पर नजर नहीं आ रहा था। जानू अचरज से देखता रह गया। जब अजीत दुकान में घुसा था तो बस्ता उसकी पीठ पर बँधा हुआ था, यह बात जानू कसम खाकर कह सकता था। तो क्या बस्ता दुकान में रह गया था? हाँ, हाँ, हो सकता है उसने उतारकर नीचे रख दिया हो और फिर भूल गया हो! यह तो बुरा हुआ।

जानू तेजी से बढ़कर उस दुकान के सामने जा खड़ा हुआ जिसमें से अजीत निकला था। वह आँखें मिचमिचाता खड़ा रहा, वह दुकान नहीं, कबाड़खाना थी जैसे। हर तरफ किताबों और अखबारों के ढेर लगे थे। फर्श पर पड़े थे ढेरों डिब्बे और छोटी-बड़ी खाली बोतलें। दुकान में रोशनी नहीं थी।

अजीत यहाँ क्यों आया था? क्या लेने आया था? यहाँ तो कोई है ही नहीं! जानू को लगा, शायद वह गलत दुकान में आ गया है। भला यहाँ क्या लेने आता अजीत? वह मुड़ने लगा तभी तेज आवाज आई—"ऐ लड़के, क्या लेगा? क्यों खड़ा है?"

जानू ने ध्यान से देखा—अखबारों के ढेर के पीछे से निकलकर एक बूढ़ा बाहर आ गया। वह लालटेन जला रहा था। लालटेन की पीली रोशनी में दुकान के अंदर का दृश्य कुछ-कुछ दिखाई देने लगा था। बूढ़े की लंबी

सफेद दाढ़ी थी—उसने फटा हुआ कुरता पहन रखा था। आँखों पर गोल फ्रेम का चश्मा था। दुकान के पिछवाड़े की तरफ एक मैला और फटा हुआ परदा झूल रहा था।

"अभी-अभी कोई आया था?" जानू ने कुछ घबराकर पूछा।

"यहाँ तो खरीदने-बेचनेवाले सारा दिन आते रहते हैं। तू अपनी कह। क्या चाहिए? नहीं, नहीं, तू क्या खरीदेगा? शायद कुछ बेचने आया है। ला, क्या है?" बूढ़े ने जानू की ओर हाथ फैला दिया।

जानू को कुछ घबराहट हुई। वह कैसे कहे—सचमुच वह कुछ भी तो नहीं खरीद सकता था, भूख लगने पर रोटी तक नहीं। इस बार उसने कुछ हिम्मत बाँधकर कहा—"मुझे कुछ खरीदना-बेचना नहीं है। मैं तो कुछ पूछने आया हूँ।"

"तो मुझे फालतू समझा है क्या? आगे बढ़!" बूढ़ा फर्श पर फैले कागजों पर ही बैठ गया। एक तरफ रखा पिंजरा उठाया और कुछ दाने उसमें डाल दिए। पिंजरे में लाल रंग की चिड़िया फुदक रही थी।

लेकिन जानू बिना पूछे कैसे जा सकता था! वह तो यह पता लगा कर ही जाएगा कि अजीत का खरगोश-वाला बस्ता क्या हुआ। इस बूढ़े बदमाश ने छीन न लिया हो! वह जरा खाँसकर बोला—"अभी-अभी एक लड़का

यहीं आया था। उसके पास खरगोशवाला बस्ता था। वह बस्ता! कहीं वह भूल से तो नहीं छोड़ गया यहाँ?"

"भूल से···हो-हो-हो···" बूढ़ा जोर से हँसा, "बड़ा भोला बनता है। भूल नहीं गया, बेच गया है। पूरा बस्ता बेचकर गया है। मैंने कोई मुफ्त में नहीं लिया है। पैसे दिए हैं। शक्ल-सूरत से किसी बड़े घर का लगता था। अरे, इन बड़े घर के लड़कों को पढ़ने की क्या जरूरत है। बिना पढ़े ही सबकुछ मिल जाता है उन्हें। लेकिन तू कौन है? तू उसका तो कुछ नहीं हो सकता। क्या मामला है?" कहकर बूढ़ा फिर हँस पड़ा।

जानू क्या कहता! क्या बूढ़ा सच कह रहा है कि अजीत अपना पूरा बस्ता इसके हाथों बेच गया है! लेकिन क्यों भला? उनके घर में तो ढेर-ढेर पैसे रहते हैं। फिर अजीत ने ऐसा क्यों किया? नहीं, नहीं, जरूर इसमें बूढ़े की कुछ बदमाशी है। यह झूठ बोल रहा है। इसी ने छीन लिया होगा। एक साथ इतनी बातें सोच गया जानू। फिर कहा, "बाबा, वह मेरा दोस्त है। अमीर आदमी का बेटा। वह बस्ता क्यों बेचेगा भला! जरूर कुछ गलती हुई है। उसका बस्ता दे दो, नहीं तो उसके पापा उसे बहुत मारेंगे। दे दो।"

दुकानदार उठकर जानू के पास आ गया। उसने जानू को घूरकर देखा; फिर बोला—"तो तू दोस्त है

उसका ! पूरे बीस रुपए दिए हैं मैंने। ला, निकाल और उठा ले। अजीब तमाशा है—एक जना बेच गया है, दूसरा खरीदने आ गया। अरे, मैं सब समझता हूँ तुम लोगों की बदमाशी।"

"पैसे मेरे पास नहीं हैं। बस, यही एक रुपया है। तुम बस्ता दे दो—मैं एक-दो दिन में तुम्हें रुपए दे जाऊँगा।" जानू ने गिड़गिड़ाकर कहा !

" अरे, तू पागल है क्या ! पैसे नहीं हैं और खरीदा माल मुफ्त में वापस कर दूँ। शेख को इतना पागल मत समझना, तेरे जैसे छोकरे बहुत देखे हैं। फूट यहाँ से, वरना वह झापड़ रसीद करूँगा कि बस..."कहकर बूढ़े ने पास रखी छड़ी उठा ली।

जानू समझ गया, यह मारने की कोरी धमकी नहीं है, मार भी सकता है। वह निराश होकर वहाँ से चल दिया। चलते-चलते मुड़कर देखा, बूढ़ा दुकान के बाहर खड़ा उसी तरफ देख रहा था। एक बार फिर जानू के कदम तेज हो गए।

रात को उसने चौकीदार चाचा के हाथ में एक रुपया रखा तो वह खुश हो उठे। उसका कंधा थपथपाकर बोले, "आज मैं और तू साथ-साथ खाना खाएँगे।" चौकीदार चाचा जब खुश होते थे तो उसे अपने साथ बैठाकर

खिलाते थे। कितने अच्छे हैं! उसे रह-रहकर बूढ़े दुकानदार की घुड़कियाँ-झिड़कियाँ चुभ रही थीं। खाना खाकर वह बाहर निकल आया। भीमसिंह चायवाला जा चुका था—पेड़ के नीचे भट्टी से निकले गरम कोयले पड़े धीमे-धीमे चमक रहे थे—सड़क के बाईं ओर बने दफ्तरों में अँधेरा था और दूसरी ओर के बँगलों में रोशनी थी, रेडियो बजने की आवाजें आ रही थीं। वह चुपचाप जाकर अजीत के बँगले के बाहर, पेड़ के नीचे खड़ा हो गया। सोचता रहा—'क्या कर रहा होगा भला अजीत? क्या बस्तेवाली बात उसने अपने पापा से कह दी होगी?. ऊँहू। कैसे कह सकता है जब खुद ही बेचकर गया है।'

जानू वहीं पेड़ के नीचे बैठ गया···पेड़ पर पत्ते हौले-हौले हिल रहे थे। पत्तों के हिलने के बीच ही पंछियों की आवाजें भी आ रही थीं। हाँ, सब पंछी अपने-अपने घोंसलों में आ चुके थे। बाहर से दाना लेकर आए माँ-बाप ने भूखे बच्चों का पेट भर दिया होगा। थोड़ी देर में सब सो जाएँगे। लेकिन जानू को नींद नहीं आ रही थी। वह वहीं लेट गया—पत्तों के बीच से चाँद का एक टुकड़ा दिखाई दे रहा था—जैसे कटी हुई बर्फ हो। पत्तों से छन-छनकर चाँदनी की बूँदें जानू के आसपास बिखर रही थीं, जैसे चाँदी के रुपए पड़े हों। चाँदी के रुपए! उसके पास तो एक ही था, वह उसने चौकीदार

को दे दिया। उस दिन चाचा एक कहानी बता रहे थे कि एक परी ने खुश होकर एक लड़के को चाँदी के रुपए दिए थे। लड़का जमीन पर बिखरी चाँदनी को हाथ लगाता तो वह सिक्कों में बदल जाती थी! उसे ज्यादा नहीं, मगर बीस रुपए भी मिल जाएँ तो काम बन जाए और वह उन्हें बूढ़े दुकानदार को देकर अजीत का खरगोशवाला बस्ता ले ले। यही सब सोचते-सोचते न जाने कब जानू को नींद आ गई।

सुबह होने से पहले ही जानू की नींद टूट गई। भीमसिंह चायवाला आ गया था। वह रात के बुझे कोयलों को फिर से जलाने की कोशिश में लगा था। बरतन धोने की खनखन-झनझन उसे रोज जगा देती थी, घड़ी के अलार्म की तरह। उठकर जानू भी भीमसिंह की मदद करता था। भीमसिंह हर रोज एक चाय जो उसे मुफ्त पिलाता था। लेकिन वह भी मुफ्त चाय का बदला काम करके चुका देता था।

सात बजते ही उसने अजीत को कोठी से बाहर निकलते देखा। वह खाली हाथ था, लेकिन पापा उसके साथ थे। जानू ने सुना, वह कह रहे थे—"कोई बात नहीं, बस्ता खो गया तो खो जाने दो। हम आज ही तुम्हें नया बस्ता और किताबें मँगवा देंगे। लेकिन बस्ता रखकर

भूल मत जाया करो ! आज ऐसे ही चले जाओ स्कूल !''

अजीत आज्ञाकारी बच्चे की तरह स्कूल की दिशा में चला गया। जानू को बूढ़े की बात याद आ रही थी। सोचने लगा, तो क्या बूढ़े ने झूठ बोला था, अजीत ने अपनी किताबें बेची नहीं थीं, वह बस्ता दुकान में भूल गया था ! और उसने निश्चय कर लिया कि वह बूढ़े के पास जाकर खूब लड़ाई करेगा। जैसे भी होगा, खरगोशवाला बस्ता लाकर अजीत के हाथों में सौंप देगा। तब तो जरूर ही हँस पड़ेगा अजीत।

दिन में चाहकर भी वह बाजार नहीं जा सका। सामनेवाले दफ्तर से कुछ सामान उठाकर कहीं ले जाना था। चौकीदार चाचा ने जानू को वहाँ लगवा दिया, पूरे चार घंटे का काम था। अच्छी मजदूरी, काम से निपटते हुए चार बज गए। वह कमान से छूटे तीर की तरह तेजी से बाजार की तरफ चल पड़ा।

लेकिन दुकान बंद थी। किवाड़ बंद थे। यह देख जानू की हिम्मत जवाब दे गई। वह ठगा-सा खड़ा रह गया। उसे लगा शायद बूढ़ा दुकानदार जानबूझकर बंद कर गया ताकि जानू आए और परेशान होकर लौट जाए। लेकिन कहीं तो रहता ही होगा खूसट। मैं उसके घर जाकर पकड़कर ले आऊँगा। अजीत का बस्ता

लेकर जाऊँगा, चाहे जो भी करना पड़े। वह खड़ा-खड़ा बूढ़े दुकानदार को कोस रहा था, तभी बगल से आवाज आई—"ऐ लड़के, किसे ढूँढ रहा है ? बूढ़े शेख को ? आज तो दुकान नहीं खोली उसने। पता नहीं क्या बात है। दुकान के पीछे ही तो कोठरी है उसकी। बगल से चला जा!" जानू ने देखा, उसे खड़ा देख शेख के पड़ोसी दुकानदार ने मदद की थी।

जानू ने ध्यान से देखा, अरे सचमुच ! किवाड़ जरूर बंद थे, पर ताला नहीं लगा था, यानी दुकान अंदर से बंद थी। उसने देखा, दुकान के बगल से एक सँकरी गली अंदर की तरफ चली गई थी। उसमें अँधेरा था। जानू उसी सँकरी गली के अंदर घुस गया। उसके नंगे पैरों में चिपचिपाहट महसूस हुई। मच्छर भिनभिना रहे थे, पर वह बढ़ता गया। दाईं ओर टाट का एक परदा लटका था, उसी में से हल्का पीला प्रकाश बाहर आ रहा था। बाकी सब तरफ अँधेरा था। वह पर्दे के पास दम साधे खड़ा रहा। थोड़ी देर बाद सन्नाटे के बीच से खाँसने की आवाज आई, जो धीरे-धीरे तेज होती गई।

जानू ने परदा हटाकर झाँका—एक छोटी-सी कोठरी में टिमटिमाती ढिबरी जल रही थी, जो रोशनी कम और धुआँ अधिक फैला रही थी। धुएँ और मद्धिम उजाले में

जानू को वही बूढ़ा नजर आया। वह बैठा हुआ छाती पकड़े खाँस रहा था।

जानू खड़ा रहा और बूढ़ा खाँसता रहा। खाँसते-खाँसते वह बीच-बीच में कराह उठता था। जानू को लगा, इस समय बूढ़े से कुछ पूछना ठीक नहीं, उसे मदद की जरूरत है। वह बढ़कर बूढ़े के पास जा खड़ा हुआ और अगले ही पल उसके हाथ बूढ़े की पीठ सहलाने लगे। चौकीदार चाचा को भी जब खाँसी का दौरा उठता था तो पीठ सहलाने पर आराम मिलता था उन्हें। और सचमुच बूढ़े की खाँसी कुछ कम हो गई—पर खाँसी बंद होते ही हाँफने की आवाज आने लगी। पीठ पर हाथ रखने से जानू को ऐसा महसूस हो रहा था जैसे अंदर कुछ उछल रहा हो। सचमुच बूढ़े की तबीयत काफी खराब थी। जानू के मन में उमड़ता गुस्सा ठंडा हो गया—उसे बूढ़े पर तरस आने लगा। उसने इधर-उधर देखा—छोटी-सी कोठरी। बाहर अभी दिन नहीं छिपा था। पर कोठरी में अँधेरा और घुटन थी—खिड़की के नाम पर सिर्फ एक रोशनदान था—उसे देखने से पता चलता था कि बाहर अभी उजाला है। कोठरी में जगह-जगह अखबारों के ढेर थे—एक तरफ रखा था स्टोव और दो-चार बरतन, वहीं पड़ी थी गरदन टूटी सुराही। खूँटी पर एक कुरता लटक रहा था। बूढ़ा जिस फटी दरी पर

बैठा था, शायद वही उसके सोने की जगह थी, क्योंकि और सब जगह बेतरतीब सामान बिखरा था।

बूढ़े की तबीयत कुछ सँभली तो उसने मिचमिचाती आँखों से जानू को घूरा। चश्मे के पीछे से उसकी आँखें बड़ी-बड़ी दिखाई दे रही थीं। फिर घरघराती आवाज से बोला—"कौन है? अंदर कैसे आया, दुकान तो बंद है! कुछ बेचना हो तो कल आना, आज तबीयत ठीक नहीं है।"

जानू ने कहा—"बाबा, आपकी तबीयत ठीक नहीं है, मैं जाता हूँ फिर आऊँगा।"

बूढ़े शेख ने कसकर जानू का हाथ पकड़ लिया, "जाएगा कैसे! बता, क्या चुराकर ले जा रहा है?"

"बाबा, मैं कुछ चुराने नहीं आया। मैं तो जा रहा था। तभी आपके पड़ोसी ने बताया तो अंदर आ गया। कोई काम हो तो मुझे बता दो। असल में..."

"क्या असल में?" बूढ़े ने पूछा।

"मैं उसी बस्ते के लिए आया था, वही खरगोश-वाला, जिसे कल एक लड़का आपको बेच गया था बीस रुपए में। रुपए तो आज भी नहीं हैं मेरे पास पर मैं आपको जल्दी ही..."

"हाँ, याद आया, तू तो कल भी आया था।"

"जी, हाँ।"

और बूढ़े ने फिर खाँसना शुरू कर दिया। इस बार खाँसते-खाँसते उसकी बुरी हालत हो गई।

"बाबा, मुझे बताओ, आपकी दवाई कहाँ है, मैं दे देता हूँ, या बाजार से लानी हो तो···"

"ताकि तू पैसे लेकर रफूचक्कर हो जाए। जैसे मैं कुछ समझता ही नहीं।" बूढ़े ने तेज स्वर में कहा, फिर सामने आले में रखी शीशी की तरफ इशारा कर दिया। शायद उसी में दवा थी। जानू ने शीशी उठाकर अंदाज से बूढ़े के मुँह में डाल दी। उससे खाँसी में थोड़ी कमी आई। इस बीच जानू लगातार बूढ़े की पीठ सहलाता रहा।

"अरे, तू मेरा कौन है, जो इतनी सेवा कर रहा है!" एकाएक बूढ़े ने कहा।

सुनकर जानू को हँसी आ गई। बोला—"मैं तो किसी का भी कोई नहीं हूँ, न ही कोई मेरा है। मैं तो बस, यूँ ही हूँ।" कहते-कहते उसकी आवाज भर्रा गई। वह चुप होकर अपने को सँभालने लगा। आँसू थे कि बाहर आने को जोर लगा रहे थे।

बूढ़ा शेख जानू को प्यार से देखता रहा, फिर बोला—"न तू किसी का है, न कोई तेरा, फिर भी उस लड़के के लिए कल से परेशान हो रहा है, जो खाने-चाटने के लिए अपनी किताबें बेच गया। सच बता, वह कौन है तेरा?"

"उसके पेड़ पर मेरा घोंसला है।" जानू अटपटे ढंग से कह गया। फिर बूढ़े को समझाने के लिए उसे पूरी कहानी सुनानी पड़ी।

जानू अपनी बात कहकर चुप हो गया। कोठरी में कुछ देर चुप्पी छाई रही। रोशनदान से दिखाई देती धूप कब की अँधेरे में खो चुकी थी। अब बूढ़े शेख की तबीयत कुछ ठीक थी। वह रह-रहकर जानू की ओर देख लेता था। आखिर जानू उठ खड़ा हुआ। उसने कहा—"बाबा, मैं कल फिर आऊँगा। कोई काम हो तो मुझे बताना! क्या तुम्हारा कोई भी नहीं है?"

"अरे, जैसा तू, वैसा मैं। न कोई तेरा, न कोई मेरा। असल में दोस्ती तो हम दोनों में होनी चाहिए। क्यों?" कहकर बूढ़ा फिर हँस पड़ा। जानू चलने लगा तो बूढ़े ने अजीत का बस्ता उसके कंधे पर लटका दिया। बोला, "जा, तेरा दोस्त भी क्या याद करेगा। वैसे मैं तो चाहता हूँ, यह बस्ता तू रख ले अपने पास। तेरे दोस्त ने तो बीस रुपए में बेच ही दिया है।"

जानू को अपने आँखों-कानों पर विश्वास नहीं हुआ। बूढ़े शेख को वह एकटक देखता रहा। यह तो चमत्कार ही था, बूढ़े ने उससे बिना रुपए लिए पूरा बस्ता लौटा दिया था। बूढ़ा शेख आखिर उतना बुरा नहीं था, जितना वह समझ रहा था। वह शेख को नमस्ते कर

बाहर निकल आया। बाहर निकल रहा था तो अंदर से फिर खाँसने की आवाज आई, पर इस बार वह नहीं रुका। हाँ, अगले दिन आने का फैसला जरूर कर लिया था उसने। जानू को बूढ़ा शेख भी अपनी तरह अकेला लगा था।

जानू सुबह से ही बस्ता लेकर कोठी के बाहर खड़ा था। वह अजीत की प्रतीक्षा कर रहा था। रह-रहकर उसकी अँगुलियाँ बस्ते पर बने उछलते खरगोश पर फिरने लगती थीं। उसके बदन में हल्की-सी फुरफुरी दौड़ जाती थी, जैसे उसकी अँगुलियों ने किसी जीवित खरगोश को छू दिया हो! कभी-कभी सोचता—अगर मैं अजीत को उसका बस्ता और किताबें न भी लौटाऊँ तो क्या फर्क पड़ेगा भला! उसने तो अब नया बस्ता, नई किताबें खरीद ली होंगी। वैसे बूढ़े शेख ने तो कहा भी था कि बस्ता मत लौटाना।

और वहीं खड़ा-खड़ा जानू सोचने लगा—बस्ता अजीत को नहीं लौटाएगा और शेख के पास जाकर रोज पढ़ना सीखेगा। बूढ़े शेख को जरूर पढ़ना-लिखना आता होगा, वरना वह इतने अखबार और किताबें क्यों रखता अपनी दुकान में। बदले में वह उसका कुछ काम कर दिया करेगा। बूढ़ा अकेला है, कोई नहीं है उसकी

देखभाल करनेवाला। उसकी देखभाल करूँगा और पढ़ लूँगा।··· अजीत की प्रतीक्षा में खड़ा-खड़ा जानू योजनाएँ बनाता रहा—तभी अजीत बँगले से बाहर आया। उसने स्कूलवाली पोशाक पहन रखी थी, लेकिन कंधे पर बस्ता नहीं था, यानी उसके पापा ने अभी नया खरीदकर नहीं दिया था। उसे खाली हाथ देखते ही जानू की योजनाएँ गड़बड़ा गईं। आखिर कुछ भी हो, खरगोशवाला बस्ता है तो अजीत का! इस तरह रख लेना तो सरासर चोरी होगी—नहीं, नहीं, यह ठीक नहीं होगा। अपनी पढ़ाई का सपना अधूरा छोड़कर वह बस्ता हाथ में लटकाए अजीत के सामने आ खड़ा हुआ।

अजीत ने जानू की तरफ ऐसे देखा जैसे जानता न हो, लेकिन जब अपने बस्ते को उसके हाथ में देखा तो उसकी आँखें आश्चर्य से खुली रह गईं। उसने लेने को हाथ बढ़ाया पर फिर पीछे खींच लिया। होंठ हिले जैसे कुछ पूछना चाहता हो, लेकिन आवाज नहीं आई। फिर चेहरे पर गुस्सा प्रकट होने लगा। जानू उसके बदलते हाव-भाव को हँसती आँखों से देखता रहा। आज पहली बार उसे अजीत से डर नहीं लग रहा था। हाँ, पहली बार ऐसा हुआ था कि अजीत की आँखें झुकी हुई थीं, और जानू निडर बना खड़ा था।

फिर उसने बस्ता अजीत की तरफ बढ़ा दिया। कुछ पल दोनों बिना हिले-डुले खड़े रहे—फिर अजीत ने बाज की तरह झपट्टा मारकर बस्ता छीन लिया और भागकर बँगले के अंदर चला गया। वहीं से चिल्लाया—"स्साला जासूस, मेरा पीछा करता है। मार-मारकर भुस भर दूँगा। अगर कभी हमारी तरफ आया तो..." और बाकी शब्द दौड़ते कदमों की आवाज में खो गए!

जानू देखता रह गया, उसे अपनी बात कहने का भी मौका नहीं दिया अजीत ने। वह जानू की बात सुनना ही नहीं चाहता। क्या इतना भी नहीं पूछ सकता था कि तुम

बस्ता कहाँ से लाए, किसने दिया। कम से कम अहसान तो मानता, खोया हुआ बस्ता वापस लाने के लिए। लेकिन तभी बूढ़े शेख की बात जानू के कानों में गूँजने लगी, "बस्ता बेच गया बीस रुपए में।" उसे अपने पर पछतावा हो रहा था कि अजीत को बस्ता क्यों दे दिया। अब वह कैसे पढ़ना सीखेगा?

इससे भी ज्यादा दुख इस बात का था कि अजीत क्या एक बार भी सच नहीं बोल सकता! ज्यादा गुस्सा उसे अजीत पर नहीं, उसके दोस्तों के प्रति था, जो अजीत से ज्यादा लंबे-तगड़े थे, जो उसे न जाने कहाँ ले जाकर सिग्रेट पीना सिखा रहे थे। शायद अजीत के पापा को पता नहीं था कि उनका बेटा बिगड़ता जा रहा है।

एक बार जानू के मन में आया कि अभी अजीत के बँगले में चला जाए और अजीत के पिता जी से अजीत के बारे में सारी बातें कह दे। फिर जो होगा देखा जाएगा। लेकिन यह भी तो हो सकता है कि अजीत के पापा जानू को झूठा समझें और अजीत फिर कभी उसे परिंदों को देखने के लिए अपने बँगले में न घुसने दे। जानू की आँखें फिर उसी पेड़ पर टिक गईं, जिसे वह अपना पेड़ कहता था। हवा में हिलते हरे-भरे पत्तों के अलावा और कुछ नहीं दिखाई दिया उसे। हरे-भरे पेड़ों पर टँगा नीला आकाश और नीचे धरती पर खिले रंग-बिरंगे फूल

कितने अच्छे लग रहे थे—लेकिन जानू को क्या ! जानू का तो इनमें से कुछ भी नहीं है । पेड़ पर रखा वह घोंसला भी नहीं—क्योंकि उसमें रहनेवाले परिंदे ही कौन से उसके हैं । क्या पता अब तक उड़कर कहीं चले गए हों । वह खामख्वाह उन्हें लेकर परेशान हो रहा है । जानू न जाने कब तक सोच में डूबा रहता, लेकिन तभी उसने अजीत को बस्ता कंधे पर लटकाए कोठी से बाहर आते देखा । पीछे-पीछे उसके पापा भी थे । अजीत के पापा को देखते ही जानू के पैर काँपने लगे—हिम्मत जवाब दे गई । उसे लगा शायद अजीत ने यही बताया होगा कि बस्ता जानू ने चुराया था—चाहे वह कितना ही कहेगा, लेकिन उसकी बात पर कौन विश्वास करेगा भला ! वह तुरंत मुड़ा और भाग खड़ा हुआ । फिर उसने पूरा दिन स्टेशन पर आती-जाती गाड़ियों को देखने में बिताया ।

लौटा तो शाम ढल रही थी । दफ्तर बंद हो चुके थे । भीमसिंह ने भी चाय की दुकान समेटनी शुरू कर दी थी । दफ्तर बंद होते ही सड़क पर सन्नाटा छा जाता था । बँगलों में रहनेवाले तो भीमसिंह की चाय पीने से रहे ! वह अँगीठी से कोयले निकालकर बुझा रहा था । पानी से बुझते कोयलों से सूँ-सूँ की आवाजें और भाप उठ रही थी । अभी सड़क पर बत्तियाँ नहीं जली थीं, आकाश का नीलापन काला पड़ने लगा था । पेड़ों के नीचे अँधेरा

उतर आया था। थोड़ी देर में भीमसिंह अपना सामान उठाकर चला जाएगा, तब वह बिल्कुल अकेला रह जाएगा। कभी-कभी तो काफी-काफी देर तक सड़क एकदम सूनी रहती थी।

शाम को जानू पेड़ों पर उतरते पंछियों का कलरव सुना करता था। दिन-भर घोंसलों में बैठे नन्हें बच्चों की हल्की चीं-चीं और दाना लेकर लौटे माँ-बाप की चहचहाहट का अंतर उसे खूब समझ में आता था। कितनी खुशी होती है इन आवाजों में। इसे शायद सिर्फ जानू ही समझ सकता था, क्योंकि वह सबसे अकेला था—सबके बीच रहकर भी और शाम ऐसे ही अँधेरे सन्नाटे में उसे बूढ़े शेख की याद आई थी! न जाने क्यों!

वह चला तो भीमसिंह ने पीछे से टोका "अब, इस वक्त कहाँ जा रहा है? अब तो चौकीदार चाचा भी आनेवाले होंगे!"

"ज़रा किसी से मिलना है।"

भीमसिंह जोर से हँस पड़ा "ज़रा बात तो सुनो छोकरे की। अब लोग इसे मिलने के लिए भी बुलाने लगे!"

जानू को बहुत बुरा लगा। बोला, "क्यों, क्या मुझे बुलानेवाला कोई नहीं है!"

भीमसिंह ने उसकी आवाज़ का दुख भाँप लिया। आगे बढ़कर उसका सिर थपककर बोला "अरे, नाराज

हो गया ! मैं तो मजाक कर रहा था।" कहते-कहते भीमसिंह की आवाज काँपने लगी। इस अनाथ बच्चे ने उसके मन में एक छोटी-सी जगह बना ली थी। भीमसिंह से उसका दूर का भी नाता नहीं था, लेकिन फिर भी···

जानू के पैर तेजी से बढ़ने लगे। सड़कों पर चहल-पहल थी—खूब शोर था, लेकिन उसे किसी से कुछ लेना-देना नहीं था, वह सीधा चलता जा रहा था।

शेख की दुकान का दरवाजा बंद था, लेकिन आज उसे पूछने की जरूरत नहीं पड़ी। बगलवाले अँधेरे गलियारे से होकर वह बूढ़े शेख की कोठरी में जा पहुँचा। अंदर भी अँधेरा था। बूढ़े शेख कहाँ चले गए, इस तरह कोठरी को अकेला छोड़कर ! वह कुछ पल दरवाजे में खड़ा रहा—फिर लौटने को मुड़ा तो अंदर कुछ आहट हुई। हाँ, आहट अंदर से ही उभर रही थी—तो क्या शेख के न रहने पर कोई उनकी कोठरी में छिपकर बैठ गया था ? तभी घरघराती आवाज आई—"कौन ?"

अरे, यह तो शेख की आवाज है !

"बाबा ! तुम कहाँ हो ?" जानू ने डरते-डरते पूछा, "रोशनी क्यों बुझा रखी है ?"

"बुझाई कहाँ, जलाई ही नहीं है। आज उठा ही नहीं गया। शायद बुखार है !" शेख की आवाज रुक-

रुककर आ रही थी।

"मैं माचिस और मोमबत्ती लेकर आता हूँ, लेकिन..." जानू कहते-कहते रुक गया। कैसे कहे कि आज उसकी जेब में फूटी कौड़ी भी नहीं थी।

शेख ने उसकी मुश्किल आसान कर दी, बोले, "कहीं जाने की जरूरत नहीं। ठहरो—मैं रोशनी करता हूँ।"

तीली घिसने की आवाज हुई, फिर काँपता हुआ पीला प्रकाश फैल गया। शेख ने तेल की ढिबरी जला ली थी।

जानू ने देखा, शेख उसी तरह कागजों के ढेर के बीच एक दरी पर लेटे थे—बिना चश्मे के उनकी आँखें बंद-सी लग रही थीं।

"तो तू आ गया!" शेख ने कहा।

"हाँ, बाबा, आ ही गया। सोचा, आपकी तबीयत ठीक नहीं है! शायद किसी काम की जरूरत हो, अब जी कैसा है?"

"अब तूने पूछा, तो याद आया वरना कौन पूछता है हमें। अरे जैसे रद्दी अखबार के ढेर हैं, वैसे ही हम हैं बेटे! हमें तो दुनिया भूल गई, और शायद ऊपरवाला भी भूल गया है, वरना इतनी तकलीफें..." शेख की बाकी बात खाँसी में दब गई।

जानू चुपचाप उठकर शेख की पीठ सहलाने लगा। उसकी आँखें दवाई की शीशी ढूँढ रही थीं। शेख भी उसे ध्यान से देख रहे थे। उसकी नजरें क्या खोज रही हैं, यह समझते देर न लगी। बोले, "बेटे, दवाई क्या करनी है! खत्म हो गई। अब दवा मुझे क्या ठीक करेगी भला!"

"नहीं, नहीं, आप बिल्कुल ठीक हो जाएँगे। मुझे बताइए, मैं लेकर आता हूँ। आपको दवा जरूर लेनी होगी।"

शेख की आँखें भर आईं। बोले, "अरे, बेटा, आज तक मुझसे किसी ने कुछ नहीं कहा। पूछा तो रद्दी अखबार, खाली बोतल और दूसरी चीजों के दाम।

शायद उनकी नजरों में मेरी कोई कीमत नहीं थी और तू आया तो सिर्फ मेरे बारे में पूछ रहा है। जा, घर जा पगले!" कहकर शेख अपनी आँखें पोंछने लगे।

जानू चुप बैठा देखता रहा—अँधेरी कोठरी में कैसे रहते हैं शेख! शायद वैसे ही जैसे वह खुद बिना छत के, पेड़ों के नीचे रह लेता है। उसने शेख से उस वैद्य का पता पूछा, जहाँ से दवा आती थी। फिर दवा लेकर आया। होटल से उनके लिए दाल और रोटी लाकर रख दी—सिरहाने पानी का गिलास। फिर यही सोचता रहा, शेख के दाँत तो हैं ही नहीं—इतनी सख्त रोटी कैसे खाएँगे। एकाएक उसने कहा—"बाबा, कहते हैं, बुखार आने पर हल्का खाना लेना चाहिए, जैसे दलिया, खिचड़ी।"

सुनकर शेख हँस पड़े और फिर उनकी हँसी खाँसी में बदल गई। उस रात उसने शेख से खूब बातें कीं। शेख को उसने अजीत के बारे में सबकुछ बता दिया। यह भी कि वह उनसे पढ़ना चाहता है।

सुनकर शेख उदास हो गए। बोले—"बेटे, तू मुझे इतना अच्छा क्यों समझता है! मैं बहुत बुरा हूँ बेटा! मुझे ही कहाँ पढ़ना-लिखना आता है। सारी जिंदगी यूँ ही गुजार दी। बचपन में पढ़ सकता था, पर नहीं पढ़ा। तेरे दोस्त की कहानी सुनकर अपना बचपन याद आ गया।

मेरे अब्बा कितना प्यार करते थे। घर में सबकुछ था, पढ़ाने टीचर आते थे, लेकिन मेरे दोस्त मुझे गलत रास्ते पर खींच ले गए। मैंने पढ़ना छोड़ दिया, घर से भाग गया। उसके बाद कहाँ-कहाँ की ठोकरें नहीं खाईं!"

"बाबा, आपके माँ-बाप बाद में नहीं मिले?" जानू ने पूछा।

"उन्होंने मुझे ढूँढ़ा जरूर, लेकिन मैं उन्हें कैसे मिलता, मैं तो उनसे भागता फिर रहा था। तेरे दोस्त की कहानी..." अपनी बात बीच में छोड़कर शेख रो पड़े...जानू को भी कुछ याद आ रहा था। एक औरत का हँसता-मुसकराता चेहरा आँखों में उभरता और फिर खो जाता। लगता था जैसे बीच में बहुत अँधेरा है—और उस अँधेरे में वह चेहरा कभी-कभी चमक उठता है, जैसे रात को एकाएक तेज रोशनी जलकर बुझ जाए। किसका चेहरा था वह? कभी-कभी वह हँसता चेहरा जानू को सपने में दिखाई देता था—उसे खूब प्यार करता था—गोदी में लेकर। उसकी आँखें भी गीली हो गईं।

एकाएक शेख की आवाज सुनाई दी—"यह क्या! तू भी रो रहा है! क्या मेरे लिए रो रहा है! वाह पगले! अच्छा ले, मैं नहीं रोता। अब चुप हो जा!" कहकर शेख ने जानू को अपने पास खींच लिया। उसकी कमर थपथपाने लगे। उलझे बालों में उँगलियाँ फिराने लगे।

जानू को अच्छा लगा—उसे नींद आ रही थी—बहुत आराम की नींद, गहरी नींद। वह सोता रहा। शेख की बूढ़ी उँगलियाँ उसका सिर सहलाती रहीं।

उसके बाद वह कई बार शेख की दुकान पर गया। शेख धीरे-धीरे अच्छे हो रहे थे। एक दिन जानू ने लगकर उनकी कोठरी की सफाई कर डाली थी। बिखरे अखबार तह करके एक कोने में लगा दिए थे। फटी दरी को सड़क पर लगे हैंडपंप के नीचे धोकर सुखा दिया। शेख ने देखा तो बोले, "अरे, तू तो जादूगर है! कैसा चमका दिया मेरी कोठरी को! अब इस कोठरी में रहकर बच्चों से उनकी किताबें औने-पौने दामों पर कभी नहीं खरीदूँगा। यह वादा करता हूँ। यह धंधा मैंने बंद कर दिया।" सुनकर जानू के होंठों पर हँसी खेलने लगी। आज वह बहुत दिन बाद मुसकराया था, जैसे बादलों से घिरे आकाश में धूप बिखर जाए। उसे हँसता देख, बूढ़ा शेख भी हँस पड़ा। बहुत देर तक हँसी गूँजती रही उस छोटी-सी कोठरी में।

गाड़ी चली गई। धीरे-धीरे प्लेटफार्म सूना होने लगा। अभी-अभी कितनी भीड़ थी और कितना शोर हो रहा था और अब सब इंजन के धुएँ की तरह जैसे हवा में गायब हो गए हैं।

सब चले गए, लेकिन जानू अब भी वहीं खड़ा था। वह कहीं जाने के लिए स्टेशन नहीं आता था। जब मन ऊबता तो समय काटने चला जाता। गाड़ियों के आने-जाने का खेल उसे अच्छा लगता था। कभी-कभी सोचता—रेल की दो पटरियाँ कहाँ तक बिछी होंगी भला ? क्या रेलगाड़ी इन पटरियों के बिना नहीं चल सकती ? कभी-कभी रेलगाड़ी के जाने के बाद खुद इंजन की तरह सीटी बजाता हुआ पटरियों पर दौड़ता। न जाने कितनी बार गिरकर चोट खाई थी उसने ! एक रोज अपनी धुन में मस्त पटरियों के बीच भागा जा रहा था, तभी जोर का धक्का खाकर दूर जा गिरा। देखा, सामने खड़ा एक व्यक्ति चिल्ला रहा है, "अबे, ऊपर जाना है क्या ! देखता नहीं गाड़ी कितनी पास आ गई है !" सचमुच सामने से रेलगाड़ी धड़धड़ाती चली आ रही थी।

जानू ने कह दिया था, "ऊपर नहीं, गाड़ी से जाना है मुझे तो···पर टिकट के लिए पैसे नहीं हैं।"

उसके भोले-भाले शब्द सुनकर उस व्यक्ति को हँसी आ गई। उसका गुस्सा पल-भर में हँसी में कैसे बदल गया, यह बात जानू की समझ में नहीं आई; उसी तरह जैसे वह दुनिया की और बहुत-सी बातों को नहीं समझता था।

लेकिन यह तो कई बरस पुरानी बात है। अब तो

जानू बहुत कुछ समझ चुका है, जैसे यही कि वह हर रोज प्लेटफार्म पर खड़ा रहेगा और गाड़ियाँ आती-जाती रहेंगी। वह भला जा भी कहाँ सकता है ! उसका था ही कौन जो उसे याद करता, अपने पास बुलाता।

लेकिन दूसरी आदतों की तरह स्टेशन पर आना भी जानू की आदत बन चुकी थी।

उस शाम वह स्टेशन के दोनों प्लेटफार्मों को जोड़नेवाले पुल पर खड़ा था। तेज हवा बह रही थी, साँझ का सूरज पश्चिम में दिखाई देती पहाड़ियों के पीछे डूब चुका था। लग रहा था जैसे उन पहाड़ियों के पीछे किसी ने भट्टी सुलगा रखी थी जो तेजी से बुझती जा रही थी।

हवा में ठंड बढ़ गई थी—बार-बार उड़ते हुए बालों को परे करता हुआ जानू पुल की सीढ़ियाँ उतरने लगा, फिर एकाएक बीच में ही ठिठक गया। सीढ़ियों के ठीक सामनेवाली बेंच पर अजीत अपने एक दोस्त के साथ बैठा था और वे दोनों सिग्रेट पी रहे थे। जानू नहीं चाहता था कि अजीत के सामने आए इसलिए वापस मुड़कर पुल पर चढ़ गया। पर आँखें अजीत पर टिकी रहीं। अजीत अपने दोस्त के साथ हाथ में हाथ डाले टहलने लगा था। रह-रहकर दोनों हँस पड़ते। लेकिन जानू को हँसी नहीं आ रही थी।

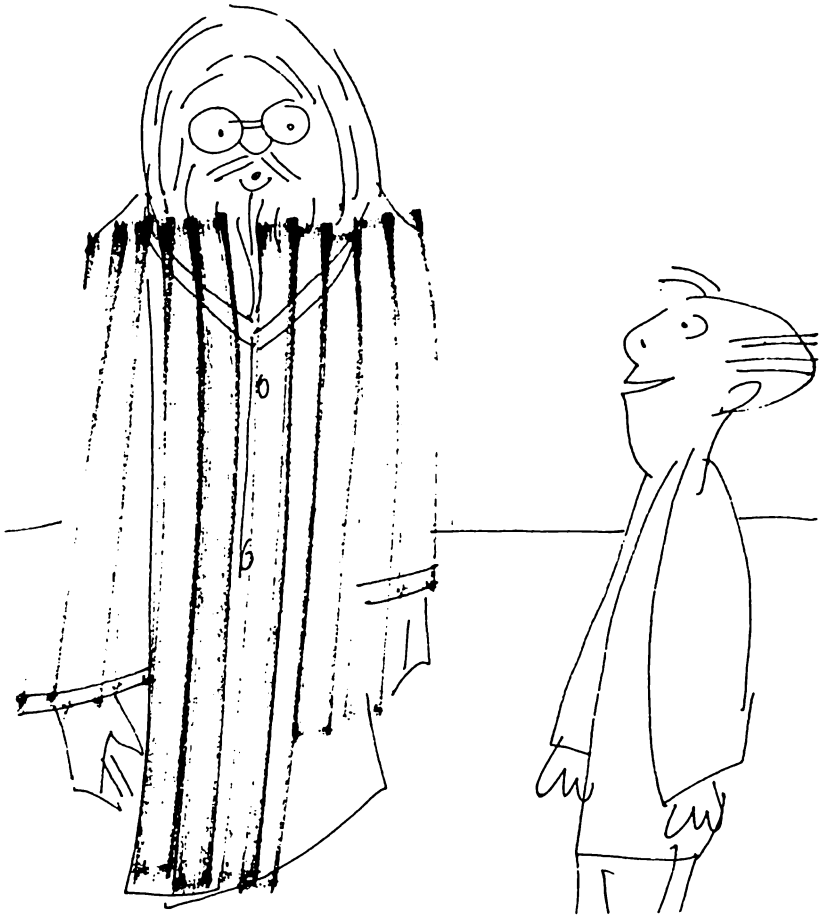

तभी एक दाढ़ीवाला व्यक्ति जानू के पास आ खड़ा हुआ। जानू ने देखा उसने काले कपड़े पहन रखे थे, कंधे पर एक झोला लटक रहा था। जानू ने महसूस किया कि दाढ़ीवाला भी उसकी तरह नीचे प्लेटफार्म पर खड़े अजीत और उसके साथी को देख रहा है। वह कुछ सतर्क

हो गया, उसने कुछ प्रकट न होने दिया, पर कनखियों से उसके हाव-भाव ताड़ता रहा।

एकाएक अजीत के साथी ने पुल की तरफ गरदन उठाई। फिर तेजी से सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर आ गया। अब वह दाढ़ीवाले के पास खड़ा था। न जाने क्यूँ जानू की धड़कन कुछ तेज हो गई। दाढ़ीवाले ने एक बार जानू की तरफ देखा, फिर धीरे-से बोला, "अजीत को कुछ शक तो नहीं हुआ?"

अजीत का दोस्त फुसफुसाया, "अब तक तो नहीं हुआ, आगे आप जानें।"

"बस, अब तुम फिक्र मत करो, मैं सब सँभाल लूँगा।" दाढ़ीवाला कह रहा था, "मैं नीचे आ रहा हूँ। तुम उसके सामने मुझसे बात मत करना। बाद में..."

और उसके बाकी शब्द इंजन की तेज सीटी में खो गए। सामने से गाड़ी चली आ रही थी। पुल काँपने लगा था। इसके साथ ही कड़वा और काला धुआँ जानू की आँखों में भर गया। भाप की गरम लपट उसके पैरों को हल्का-सा गीला करती हुई गुजर गई, एकदम उसके नीचे से।

जानू बुरी तरह खाँस उठा। आँखों में कड़वाहट भर गई। वह आँखें मलता हुआ पीछे हट गया। धुआँ साफ हुआ तो उसने देखा, दाढ़ीवाला व्यक्ति अब भी वहीं खड़ा

था। हाँ, अजीत का दोस्त नीचे उतर चुका था। जानू का मन परेशान था कि वह उन दोनों की बात पूरी न सुन सका, वरना यह पता चल जाता कि वे क्या करनेवाले हैं अजीत के साथ। तो उसका संदेह सही निकला था। दाढ़ीवाले की बातों से यह पता चल गया था कि अजीत को किसी चक्कर में फँसाने की चालें चली जा रही हैं। जब से दाढ़ीवाले की बातें सुनी थीं, डर लग रहा था जानू को। वह अजीत के दोस्तों से नहीं डरता था, लेकिन यह दाढ़ीवाला··· अजीत ने कनखियों से देखा, दाढ़ीवाला अब भी अपनी जगह खड़ा नीचे प्लेटफार्म पर नजरें गड़ाए हुए था, जहाँ अजीत अपने दोस्त के साथ बातों में मशगूल था। यानी अजीत को बिल्कुल पता नहीं था कि उसका दोस्त उसके साथ कोई चाल खेल रहा है।

दाढ़ीवाले का एक वाक्य बार-बार उसके कानों में गूँज जाता था, 'अजीत को शक तो नहीं हुआ ?'

अजीत को भला कैसे शक हो सकता था ! उस बेचारे को तो कुछ पता ही नहीं था। लेकिन जानू को जरूर शक हो गया था उस दाढ़ीवाले पर। जरूर उसके मन में कोई खोट था, चालाकी थी।

उसने अजीत की तरफ देखा। वह किसी बात पर जोर-जोर से हँस रहा था। काश, वह अजीत को उस दाढ़ीवाले के बारे में बता सकता। लेकिन जानू को मालूम

था कि अजीत उसकी बात पर कभी विश्वास नहीं करेगा।

वह मन मसोसकर खड़ा रह गया। कितनी बार ऐसा हुआ है कि वह अजीत से कुछ कहना चाहकर भी नहीं कह पाया था, लेकिन आज वह चुप नहीं रहेगा, जरूर कहेगा। उसे बताएगा कि उसके दोस्त झूठे हैं, दगाबाज हैं। न जाने क्यों आज उसे अजीत पर गुस्सा नहीं आ रहा था। शायद अजीत इतना बुरा नहीं था, जितना जानू उसे समझने लगा था। उसे अपने दोस्तों के बारे में कुछ पता ही नहीं था, वरना वह उनके साथ कभी न घूमता। ये कैसे दोस्त हैं! जानू ने वहीं खड़े-खड़े मुँह बिचका दिया। सच्चे दोस्त की कहानी चौकीदार चाचा अक्सर सुनाया करते हैं उसे—ऐसे दोस्त की जो अपने दोस्त को मुसीबत से बचाने के लिए उफनती नदी में कूद पड़ता है, अपनी जान की भी परवाह नहीं करता। रात को जब भी उसे नींद नहीं आती, चौकीदार चाचा पहरा देते-देते उसे नींद भगानेवाली कहानियाँ सुनाने लगते हैं—परियों की, राक्षस की, काले किले में कैद राजकुमारी की, हँसने वाले फूल की, और भी न जाने कितनी कहानियाँ। दिन निकल आता और चाचा कहानियाँ सुनाते रहते। हर दिन एक नई कहानी। न जाने कहाँ से लाते थे वह ऐसी कहानियाँ।

सब तरफ अँधेरा छा गया था। दूर सामने सिगनल की लाल बत्ती ऐसी लग रही थी, जैसे खतरे का संकेत हो।

हवा में ठंड बढ़ गई थी, पर वह अभी कुछ देर पुल पर ही खड़े रहना चाहता था, क्योंकि पुल पर बीच में जहाँ वह खड़ा था, अँधेरा था—सीढ़ियों के छोर पर बत्तियाँ जरूर जल रही थीं। जानू चाहता था, अभी उसे कोई न देखे। वह छिपकर उस दाढ़ीवाले की, और अजीत के साथी की हरकतें देखना चाहता था, जो अपने को अजीत का दोस्त कहता था।

थोड़ी देर बाद वह दाढ़ीवाला व्यक्ति सीढ़ियों से उतरकर नीचे पहुँचा और अजीत के पास खड़ा होकर सिग्रेट जलाने लगा। उसने किसी से कुछ कहा नहीं, फिर दरवाजे की तरफ बढ़ चला। उसके जाते ही अजीत के साथी ने अजीत से कुछ कहा, फिर वे दोनों भी दरवाजे की तरफ चल दिए। अब नीचे उतरना जरूरी था, वरना अँधेरे में वे नजरों से ओझल हो सकते थे। जानू तेजी से सीढ़ियाँ उतरा, फिर भागता हुआ मुख्य दरवाजे से बाहर निकल गया।

स्टेशन के सामने दुकानों में रोशनी की चकाचौंध थी, लेकिन उनसे आगे अँधेरा छाया हुआ था। जानू ने देखा, अजीत और उसका साथी फुटपाथ पर चले जा रहे

थे। अपने लंबे-तड़ंगे साथी की तुलना में अजीत किसी बौने की तरह दिखाई दे रहा था। थोड़ी दूर पर उसे दाढ़ीवाला भी दिखाई दिया। वह सिर झुकाए तेजी से चला जा रहा था।

थोड़ा आगे एक छोटा-सा रेस्टोरेंट था। दाढ़ीवाला उसमें घुस गया। उसने एक बार मुड़कर देखा तो अजीत का साथी भी अजीत को लेकर अंदर चला गया।

जानू निश्चय नहीं कर सका कि अब वह क्या करे। रेस्टोरेंट में जाने के लिए न उसके पास पैसे थे और न ही उसे अंदर जाना चाहिए था। उसने सुना था कि होटलों में अमीर लोग सौ-सौ रुपए खर्च कर देते हैं। लेकिन जानू की जेब में तो एक पैसा भी नहीं था।

रेस्टोरेंट के बाहर एक पानवाला बैठा था। उसने एक ढिबरी जला रखी थी। जानू थोड़ा पीछे हटकर खड़ा हो गया। उसे जोर की भूख लग रही थी—सुबह से ही उसने कुछ नहीं खाया था और शायद आज कुछ मिलनेवाला भी नहीं था।

सर्दी लगी तो जानू दोनों हाथ बगल में दबाकर बैठ गया। फिर उसने अपने सिर को भी घुटनों में छुपा लिया—कम से कम इस तरह ठंड से तो बचा ही जा सकता है। एकाएक खन् की आवाज हुई। जानू ने देखा किसी ने उसके सामने दस पैसे का सिक्का फेंका था। हल्के

प्रकाश में सिक्का सफेद बूँद की तरह चमक रहा था। जानू का मन तड़प उठा। शायद इस तरह ठंड में ठिठुरते देखकर किसी ने उसे भिखारी समझ लिया था

क्या उसे हमेशा भिखारी ही समझा जाएगा ? वह तो किसी से कुछ नहीं माँगता। लेकिन फिर उसे एकाएक कुछ ख्याल आया और वह मुस्करा उठा। उसने सिक्के को यूँ ही पड़ा रहने दिया और फिर पहले की तरह घुटनों में मुँह छिपाकर बैठ गया। यह तो अनजाने में ही एक अच्छी बात हो गई थी। अब अगर वह इसी तरह बैठा रहे तो किसी को भी शक नहीं होगा—और वह अपने मतलब की बात देख-सुन सकेगा।

थोड़ी ही देर में कई राहगीरों ने दया-भाव से दस और पाँच पैसे के कुछ सिक्के उसके सामने डाल दिए। वह उसी तरह गुड़ीमुड़ी बैठा हुआ कनखियों से रेस्टोरेंट के दरवाजे की ओर देख रहा था।

थोड़ी देर बाद रेस्टोरेंट का दरवाजा खुला और दाढ़ीवाला बाहर आया। वह ठीक जानू के पास आकर खड़ा हो गया। जानू का दिल बहुत तेज धड़क रहा था। न जाने अब क्या होनेवाला था। दाढ़ीवाला वहीं खड़ा होकर सिग्रेट पीने लगा। एकाएक जानू ने उसकी आवाज सुनी, "राजू क्यों नहीं आया अभी तक ?"

थोड़ी देर में तेज कदमों की आहट हुई और एक

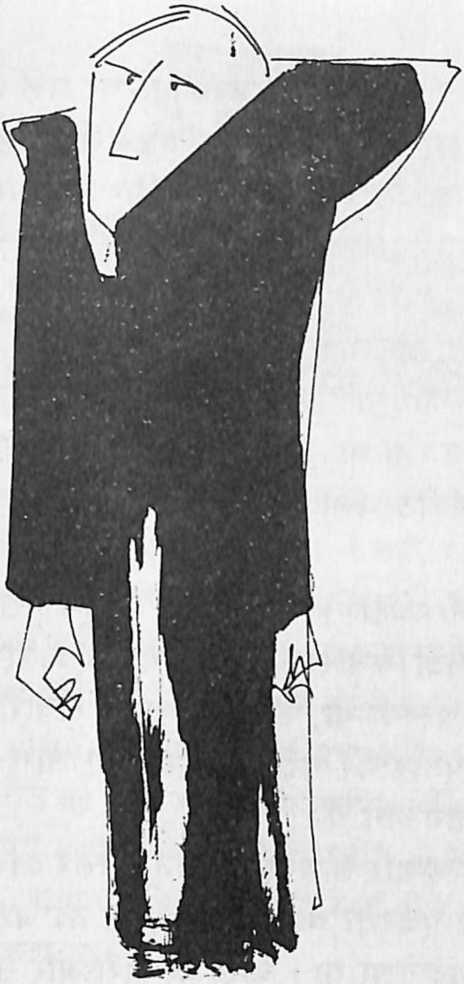

व्यक्ति वहाँ आ पहुँचा। उसने ओवर कोट पहन रखा था।

दाढ़ीवाला धीरे-से बोला, "राजू, मैंने पत्र लिख

दिया है। तुम इसे लेकर अजीत के घर चले जाओ। पत्र पहुँचाकर काली कोठी आ जाना। अजीत वहीं रहेगा।''

कागज की सरसराहट हुई, फिर आनेवाला चुपचाप चला गया। दाढ़ीवाला थोड़ी देर वहाँ खड़ा सिग्रेट पीता रहा, फिर रेस्टोरेंट में चला गया।

यह अजीत के घर खत क्यों भेज रहा है ? क्या अजीत घर नहीं जाएगा ? धीरे-धीरे काफी रात हो गई थी। जानू सोच रहा था, अजीत के पापा जरूर चिंता कर रहे होंगे। अजीत भला काली कोठी क्या करने जाएगा इस समय !

काली कोठी से परिचित था जानू। नल बाजार के रास्ते में नदी किनारेवाली कोठी थी। एक बार चौकीदार चाचा ने बताया था, कोठी की बाहरी दीवारों पर सलेटी रंग की पुताई की गई थी—इसीलिए लोग उसे काली कोठी कहने लगे थे।

नल बाजार जाते समय जानू अक्सर काली कोठी के बाहर से गुजरता था। उसने कोठी का बड़ा दरवाजा हमेशा बंद देखा था। कोठी के चारों ओर ऊँची दीवार थी। वह कई जगह से टूट गई थी। काली कोठी के अहाते में अमरूद के कई पेड़ थे। जानू एक-दो बार चोरी से उसी टूटी दीवार के रास्ते अंदर घुसा था और अमरूद तोड़कर लाया था।

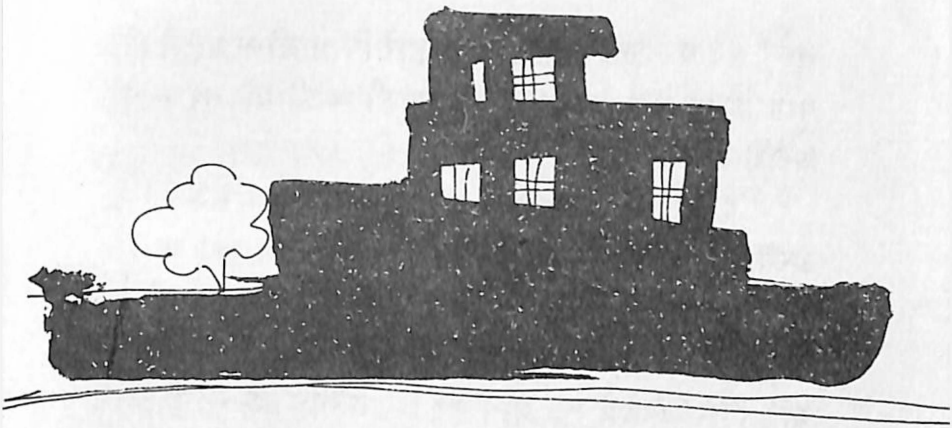

काली कोठी एकदम सुनसान रहती थी। हालाँकि अमरूद तोड़ते हुए उसे कभी किसी ने नहीं रोका था लेकिन वहाँ के झाड़-झंखाड़ और बंद खिड़की-दरवाजों को देखकर उसे बहुत डर लगता था। वह तो बड़ी खराब जगह है। तब अजीत वहाँ इस समय अँधेरे में क्या करने जा रहा है! सोचते-सोचते जानू को पक्का विश्वास हो गया कि अजीत का वहाँ जाना ठीक नहीं। लेकिन उसे रोका कैसे जाए? अगर किसी तरह अजीत के पिता जी को पता चल जाता या इस वक्त शेख यहाँ होते तो कुछ किया जा सकता था—लेकिन···

जानू सोचना छोड़कर सामने देखने लगा—अजीत और उसका दोस्त बाहर आ गए थे। अजीत की आवाज सुनाई दी, "बहुत देर हो गई, सर्दी भी काफी है।"

अजीत के साथी ने कहा, "तो क्या हुआ, आज तो

तुम्हें मेरे घर ठहरना है। मैं तुम्हारे पिता जी से पहले ही पूछ आया हूँ। आओ चलें। काली कोठी की तरफ से चलेंगे।"

"उधर तो बहुत सन्नाटा रहता है इस समय!" अजीत ने कहा। उसकी आवाज में डर बोल रहा था।

"अरे, वह छोटा रास्ता है। हम जल्दी से पहुँच जाएँगे। तुम कोई लड़की हो जो इस तरह डर रहे हो! और फिर अकेले तो नहीं हो।" अजीत के साथी ने हँसकर कहा और उसका हाथ पकड़कर जैसे घसीटता हुआ आगे ले चला।

दाढ़ीवाला भी, जो अब तक एक तरफ छिपा खड़ा था, तेजी से उनके पीछे जाने लगा। अब देर करने का समय नहीं था। जानू तेजी से उठ खड़ा हुआ। पाँच और दस पैसे के सिक्के फर्श पर बिखरे पड़े रहे। वह काली कोठी का एक दूसरा रास्ता जानता था, जिससे बहुत जल्दी वहाँ पहुँचा जा सकता था।

जानू सोच रहा था कि अजीत और दाढ़ीवाले से भी पहले वह वहाँ पहुँच जाए तो अच्छा हो। वह छोटे रास्ते से काली कोठी की तरफ चल दिया।

लेकिन उसे आधे रास्ते में ही रुक जाना पड़ा। वहाँ सड़क एक पुलिया के ऊपर से होकर गुजरती थी। इस समय पुलिया की जगह मलबे का ढेर था। वहाँ सड़क

धँस गई थी। बल्लियाँ लगाकर लालटेनें लटका दी गई थीं—उन पर लाल कपड़ा बाँध दिया गया था। जानू पार जाने का तरीका खोजने लगा। यह तो बुरा हुआ, इस तरह तो बहुत देर हो जाएगी ! वह तो जल्दी पहुँचने के फेर में इधर से आया था !

वह धँसे हुए हिस्से के पास जाकर नीचे झाँकने लगा, तभी किनारे की मिट्टी खिसक गई और वह लुढ़कता हुआ सड़क से नीचे जा गिरा। गनीमत हुई कि मिट्टी का ढेर उस पर नहीं गिरा, वरना जीते-जी समाधि बन जाती जानू की।

जानू के होंठों से चीख निकल गई। वह मैदान में भरे पानी में जा गिरा था। लेकिन मदद कौन करता, वहाँ कोई था ही नहीं।

किसी तरह वह सड़क पर पहुँचा तो काफी देर हो गई थी। उसके कपड़े फटकर पानी और कीचड़ में भीग चुके थे। सारे बदन में दर्द हो रहा था। तबीयत हो रही थी, कहीं लेटकर आँखें मूँद ले, लेकिन यह नहीं कर सकता था जानू। उसे जल्दी से जल्दी काली कोठी पहुँचना था। पहले ही अपनी गलती से बहुत देर हो गई थी। वह लँगड़ाता हुआ लौट चला। ठंडी हवा गीले बदन पर काँटे चुभा रही थी। उसकी आँखों में जलन हो रही थी, लेकिन इस सबसे बेखबर जानू बढ़ा जा रहा था।

काली कोठी सचमुच काली दिखाई दे रही थी। आसमान में चाँद नहीं था। काली कोठी की सब खिड़कियों में अँधेरा था और आसपास कहीं भी रोशनी नहीं थी।

जानू बुरी तरह घबरा गया था। कहाँ है अजीत? क्या हुआ उसे? वह इधर-उधर देख रहा था। सोच रहा था, तो क्या दाढ़ीवाले ने गलत कहा था? वे लोग यहाँ नहीं आए! तब कहाँ गए?

एकाएक उसके विचारों का क्रम टूट गया। कहीं दरवाजा खुलने की आवाज हुई, फिर हल्की रोशनी दिखाई दी। उसका ख्याल गलत था। काली कोठी निर्जन नहीं थी। वहाँ जरूर कोई था। लेकिन कौन? झाड़ियों में छिपा जानू ध्यान से देखता रहा। फिर आनेवाले को पहचान गया। वही दाढ़ीवाला था।

वह मोमबत्ती लेकर आया था। बाहर आते ही उसने मोमबत्ती बुझा दी थी और ठीक दरवाजे के पास खड़ा हो गया था। फिर सड़क पर कदमों की आहट सुनाई दी। एक छाया दिखाई दी।

दाढ़ीवाले की आवाज आई, "राजू, क्या हुआ?"

"अजीत के पिता के पास खत पहुँचा दिया।"

ठीक है, रात को बारह बजे रेल-पुल के पास आने को लिख दिया था मैंने। अजीत उसका इकलौता लड़का है, अगर उसे अपना लड़का वापस चाहिए तो वह 50,000

रुपए जरूर लेकर आएगा।"

"ठीक है। अब क्या करना है?" राजू नामक व्यक्ति ने पूछा।

"मैं रेल के पुल के पास जाता हूँ। तुम यहाँ सँभाल लो। वैसे चिंता की कोई बात नहीं है। अजीत का दोस्त उस पर नजर रखे हुए है। वह कहीं नहीं जा सकता।" इसके बाद धीरे-धीरे बातें करते हुए दोनों आगे बढ़ गए।

जानू का दिल तेजी से धड़क रहा था। जो कुछ उसने सुना था उसका मतलब यही था कि अजीत काली कोठी के अंदर वहीं मौजूद था और इन बदमाशों ने, हाँ, अब उनकी बदमाशी में कोई संदेह नहीं था, उसके पिता से 50,000 रुपए माँगे थे और रुपए लेकर रेल-पुल के पास आने को कहा था। इसका मतलब यह भी था कि अजीत अंदर बंद है।

उसने बाहर की तरफ देखा, धीमी आवाजें आ रही थीं, वे दोनों अभी बातें कर रहे थे।

काली कोठी का मुख्य द्वार खुला हुआ था, पर वह उसमें होकर नहीं गया। कोठी की चहारदीवारी कहाँ से टूटी हुई है, यह जानू को मालूम था। वह दबे पाँव टूटी जगह में से होकर अंदर प्रवेश कर गया। नंगे पैरों में कँटीली झाड़ियाँ चुभने लगीं। दाँत भींचे जानू कोठी के

बड़े दरवाजे के पास जा पहुँचा। वह थोड़ा-सा खुला हुआ था। जानू झट अंदर हो गया। अंदर अँधेरा था। वह अँधेरे में देखने की कोशिश करता हुआ खड़ा रहा। कोने में सीढ़ियाँ नजर आईं, सीढ़ियों के ऊपरी हिस्से में अँधेरा कुछ कम था। शायद ऊपर कहीं रोशनी है। वह पैर दबाकर सीढ़ियों पर चढ़ गया। मन में यह भी सोच रहा था कि अगर दाढ़ीवाला और राजू ऊपर आ गए तो क्या होगा!

लेकिन अब ज्यादा सोचने का वक्त नहीं था। दाढ़ीवाला तो शायद रेल-पुल की तरफ जा चुका था—हाँ, राजू जरूर आ सकता था अंदर। अगर राजू आ गया तो वह क्या करेगा, यही सोच रहा था जानू।

सीढ़ियाँ जहाँ खत्म हुई थीं वहाँ एक लंबा गलियारा था। दोनों तरफ बंद दरवाजे दिखाई दिए। दूर बाएँ कोने में एक कमरे का दरवाजा थोड़ा खुला था। उसी में से प्रकाश की रेखा बाहर फूट रही थी। जानू झट कमरे के बाहर जा खड़ा हुआ। अंदर से कराहने की आवाजें आ रही थीं।

जानू ने दरवाजे की दरार से झाँककर देखा तो उसका दिल उछल पड़ा। सामने अजीत बैठा नजर आया। उसने किवाड़ को ज़रा धकेला तो पल्ले खुल गए। जानू ने देखा कि अजीत के हाथ-पैर एक रस्सी से बँधे थे और

उसके मुँह में कपड़ा ठुँसा हुआ था। जानू को देखकर अजीत ने कुछ कहना चाहा पर मुँह से शब्द बाहर नहीं आए। एक अजीब-सी आवाज निकलकर रह गई। पास में ही अजीत का साथी बैठा था, उसके हाथ-पैर भी बँधे थे, लेकिन मुँह में कपड़ा नहीं ठुँसा हुआ था।

जानू एक ही उछाल में अजीत के पास पहुँच गया और उसके मुँह से कपड़ा निकाल दिया। अजीत जोर से चीखा, पर जानू ने उसका मुँह दबा दिया। धीरे-से कहा, "शोर मत करो। मैं तुम्हारी रस्सी खोलता हूँ, कहीं बदमाश न आ जाएँ।"

अब तक अजीत का साथी चुपचाप बैठा था, पर जैसे ही जानू अजीत के बंधन खोलने लगा, वह बोला, "तू यहाँ क्यों आया ? क्या तू भी बदमाशों में शामिल है?"

"घबराओ नहीं, मैं तुम्हारे बंधन भी खोल दूँगा।" जानू ने कहा।

"अजीत, यह लड़का ठीक नहीं है, न जाने तुम्हें किस

चक्कर में उलझा दे, इसके साथ मत जाओ।" साथी ने अजीत से कहा।

अजीत ने कुछ कहना चाहा, पर उसके होंठ फड़फड़ाकर रह गए।

जानू इसके बाद अजीत के साथी के बंधन खोलने बढ़ा तो उसने बँधे हाथों का मुक्का जानू के पेट में जड़ दिया। जानू पीड़ा से बिलबिला उठा। चोट तो उसे पहले ही लगी हुई थी। जानू का रहा-सहा शक भी दूर हो गया था। निश्चय ही अजीत का साथी बदमाशों से मिला हुआ है, वरना वह चोट क्यों पहुँचाता। शायद वह नहीं चाहता था कि अजीत उस कमरे से बाहर जाए।

और इतनी देर बाद यह बात तो अजीत की भी समझ में आ गई थी। उसका चेहारा गुस्से से तमतमा उठा। उसने मुट्ठियाँ तानकर उस लड़के के पेट में जोर से घूँसा मारा। वह उठने लगा तो कमरे में पड़ी कुर्सी उठाकर उस पर दे मारी। अजीत का साथी फर्श पर गिर पड़ा। फिर दोनों बाहर निकल आए।

उन्हें बाहर जाता देख वह लड़का अंदर से चिल्लाया, "अजीत भाग रहा है! अजीत भाग रहा है! दौड़ो!"

अजीत की आँखों पर तना परदा जैसे एक बार में ही हट गया। अब उसे हर बात साफ-साफ दिखाई दे रही थी। दोनों तेजी से सीढ़ियों की तरफ बढ़े लेकिन कोई

ऊपर चढ़ता आ रहा था। शायद दाढ़ीवाले का साथी राजू ही था।

जानू का हाथ पकड़कर अजीत सामनेवाले कमरे में घुस गया। राजू ने आकर कमरे का दरवाजा खोला और उसकी तेज आवाज सुनाई दी, "कहाँ गया ? सीढ़ियों पर । तो मैं था !"

"पता नहीं, हो सकता है ऊपर भाग गया हो।" यह अजीत के धोखेबाज साथी की आवाज थी।

अंदर कुछ खटपट हुई, जानू ने कुछ सोचा, फिर दौड़कर बाहर से दरवाजा बंद कर दिया। अब राजू और अजीत का वह साथी कमरे में बंद हो गए थे। वे जोर-जोर से दरवाजे पर धक्के मार रहे थे।

"भागो!" जानू ने अजीत से कहा और दोनों एक-दूसरे का हाथ थामकर सीढ़ियाँ उतरने लगे। अजीत ने कसकर जानू का हाथ पकड़ रखा था। इस तरह तो कभी नहीं पकड़ा था उसने जानू का हाथ।

लेकिन वे सीढ़ियों से नहीं उतर सके। सीढ़ियों के ठीक नीचे वही दाढ़ीवाला खड़ा था। अजीत को देखते ही वह गुर्राया, "ओह ! तो तू भागने की कोशिश कर रहा था ! अब नहीं छोड़ूँगा तुझे। लेकिन वह कहाँ गया ?" और यह कहकर वह तेजी से ऊपर की तरफ लपका। जानू और अजीत ने एक-दूसरे को इशारा किया, दोनों दो

तरफ भागे; दाढ़ीवाला अजीत के पीछे भागा तो पीछे से जानू चिल्लाया, "पुलिस, पुलिस !"

पुलिस शब्द सुनते ही दाढ़ीवाले ने घूमकर देखा। अजीत के लिए इतना ही इशारा बहुत था—उसने दाढ़ीवाले को जोर का धक्का दिया और कूदकर भाग निकला। वे आँधी-तूफान की तरह सीढ़ियों से उतरे और अँधेरे में गिरते-पड़ते बाहर की तरफ भागे।

ऊपर जोर-जोर से आवाजें आ रही थीं।

"अब ?" अजीत ने काँपती आवाज में कहा।

"रेलवे पुल की तरफ। वहीं बुलाया है इस बदमाश ने तुम्हारे डैडी को।" जानू ने हाँफते हुए कहा। उसकी साँस फूल रही थी। कानों में धड़-धड़ की आवाजें आ रही थीं।

वे टूटी हुई चहारदीवारी से निकलकर भाग खड़े हुए, तेज, और तेज···उनके पीछे भी भागते कदमों की आहट थी—मुड़कर देखने की जरूरत नहीं थी—लेकिन जानू जानता था कि दाढ़ीवाला, उसका साथी राजू और अजीत का नकली दोस्त तीनों उनके पीछे भाग रहे थे।

"मैं नहीं भाग सकता। मेरा सिर घूम रहा है।" अजीत ने लड़खड़ाते हुए कहा।

"हिम्मत करो। रुकना मत। रुकोगे तो बदमाश मार डालेंगे। भागते रहो।" जानू ने फुसफुसाकर कहा।

खुद उसका हाल भी बुरा था। सारा बदन टीस रहा था। आँखें मिची जा रही थीं, लेकिन वह अजीत का हाथ पकड़े तेजी से भागता जा रहा था—तेज, और तेज··· और तेज···

तभी सामने से रोशनियाँ दिखाई दीं। दोनों की आँखें चौंधियाँ गईं। सामने से कोई मोटर तेजी से दौड़ी आ रही थी। अब कोई उपाय नहीं था। आगे कुचलने को दौड़ती कार थी और पीछे थी मौत। दोनों सड़क से कूदकर फुटपाथ पर आ गए। तभी एक नई आवाज गूँजी—"अजीत! अजीत! अजीत! रोको। यह तो अजीत है।"

"पापा!" अजीत चिल्लाया और बेहोश हो गया।

गाड़ी रुकी और अजीत के पापा कूदे। उन्होंने

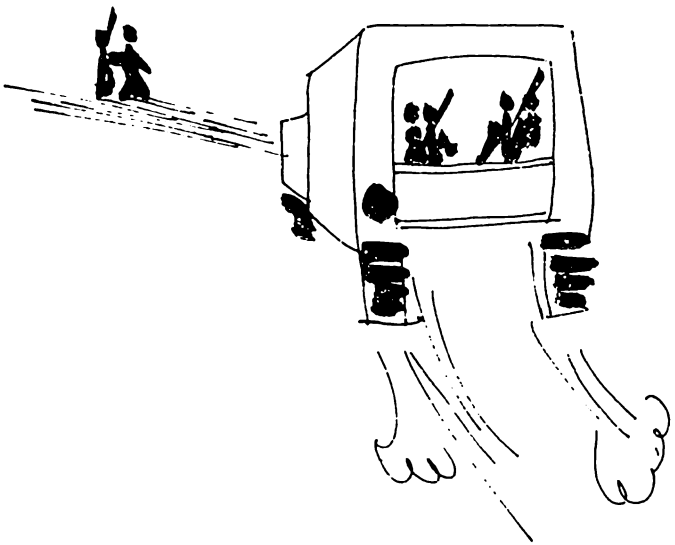

पागलों की तरह अजीत को गोद में भर लिया। उनके पीछे गाड़ी से कूदे तीन-चार वर्दीधारी सिपाही।

दाढ़ीवाला और उसके साथी नजदीक आ चुके थे। तभी जानू ने कहा, "अजीत को पकड़नेवाले बदमाश भाग रहे हैं। जल्दी कीजिए। एक दाढ़ीवाला, एक···"

आवाज सुनते ही इंस्पेक्टर और सिपाही लपककर जीप में बैठे और जीप गुर्राहट के साथ भाग चली। इंस्पेक्टर की आवाज गूँजी, "भागने की कोशिश मत करो! जहाँ हो वहीं रुक जाओ, वरना गोली मार दूँगा।"

अब भागने की हिम्मत जवाब दे गई बदमाशों की। सिपाहियों ने कूदकर उन्हें जकड़ लिया। उनका खेल खत्म हो गया था।

इंस्पेक्टर धीरेंद्र सबको साथ लेकर पुलिस- स्टेशन आ पहुँचे। रात के बारह बज रहे थे। बदमाशों को हथकड़ियाँ लगाई जा चुकी थीं। वे डरे हुए एक कोने में खड़े थे। एकाएक इंस्पेक्टर धीरेंद्र ने जानू की ओर इशारा किया, "अरे, हाँ, यह लड़का कौन है?" उन्होंने कड़ी नजर से जानू को घूरा।

"यह?" अजीत बुदबुदाया।

"हाँ, यह?"

"अरे! इसी ने तो एक बार अजीत का बस्ता चुराया

था। यह कैसे आ गया ?" अजीत के पिता ने टेढ़ी नजर से उसे घूरा। जानू को लगा जैसे वह फिर कहनेवाले हों, 'भागो !'

लेकिन अजीत ने किसी को और कुछ कहने का मौका नहीं दिया। उसका हाथ पकड़कर बोला, "यह जानू है, मेरा दोस्त !" आगे उससे बोला न गया, गला रुँध गया, "इसी ने बचाया है मुझे।"

"हाँ, मैं इसका दोस्त हूँ।" जानू के होंठों ने जैसे अजीत की बात दोहरा दी और फिर उससे लिपट गया। उसकी आँखों से भी आँसू बह चले, लेकिन उसने रोकने की कोशिश नहीं की। बहते आँसुओं से उसे आराम महसूस हो रहा था। कमरे में सिसकियों की आवाज तैर रही थी। एक-दूसरे से लिपटे अजीत और जानू रो रहे थे। रोए जा रहे थे। थोड़ी देर के लिए कमरे में बाकी सब आवाजें शांत हो गईं। अजीत के पिता ने हाथ बढ़ाया—अजीत को चुप कराने के लिए या फिर अजीत और जानू को एक-दूसरे से अलग करने के लिए। पर फिर वह अपनी जगह जमे-से खड़े रह गए। उनकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। लेकिन जो कुछ दिखाई दे रहा था, उसे तो मानना ही था—उन्होंने देख लिया था कि अजीत जोर से जानू का हाथ पकड़े हुए था, जैसे कोई दोनों को अलग न कर दे।

"कौन है यह लड़का ?" इंस्पेक्टर ने फिर पूछा।

"यह हमारी कोठी के बाहर सड़क पर कहीं रहता है शायद। बाकी मैं कुछ नहीं जानता।" अजीत के पिता ने कहा।

"मैं बताऊँ। सड़क बनानेवालों ने इसका पेड़ काट दिया था। इसलिए यह हमारे पेड़ पर अपनी चिड़ियों का घोंसला रख गया था।" अजीत ने धीरे-से कहा और मुसकरा उठा।

इंस्पेक्टर की समझ में अब भी पूरी बात नहीं आई थी, इसलिए उन्होंने अपना ध्यान अपराधियों की तरफ लगा दिया। उनसे तो बहुत कुछ पूछना था अभी।

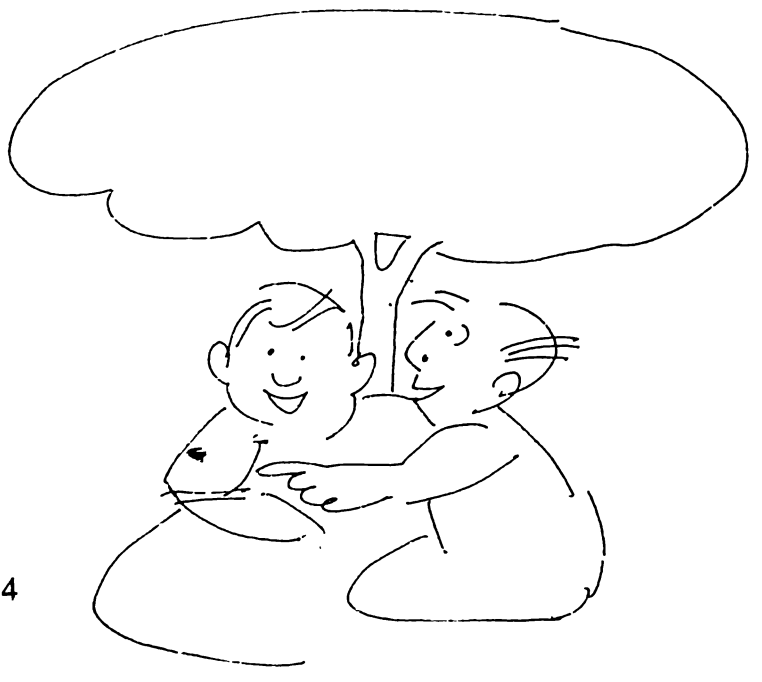

अगले दिन इंस्पेक्टर अजीत के घर आए। उस समय अजीत और जानू पेड़ के नीचे बैठे बातें कर रहे थे। इंस्पेक्टर धीरेंद्र को अजीत के पिता अंदर ले गए। इंस्पेक्टर ने उन्हें पूरी घटना बताई।

दाढ़ीवाले का नाम शंकर था। वह एक पुराना अपराधी था। बहला-फुसलाकर बच्चों का अपहरण करता था, फिर फिरौती के रूप में हजारों-लाखों रुपए माँगता था।

अजीत का दोस्त शंकर का रिश्तेदार था। उसी की मदद से शंकर ने अजीत के अपहरण की योजना बनाई थी। अजीत का दोस्त शंकर के कहने पर ही बहाना बनाकर अजीत को काली कोठी ले गया। वहाँ शंकर ने उन दोनों के हाथ-पैर बाँध दिए ताकि अजीत को यह न लगे कि उसका दोस्त शंकर से मिला हुआ है, लेकिन अपने दोस्त की पोल अजीत के सामने तब खुल गई थी, जब उसने उन्हें भागने से रोका था।

अजीत के पिता अपहरण की खबर और फिरौती की माँगवाला पत्र पाते ही घबरा उठे थे। शंकर ने पत्र में लिखा था कि '50,000 रुपए लेकर रेल-पुल के नीचे जाओ। पुलिस को खबर मत करना वरना अजीत जिंदा नहीं बचेगा।' अजीत के पिता तुरंत रुपए लेकर चल दिए थे। उन्हें अजीत की चिंता थी। रुपए बहुत थे उनके

पास—यह बात शंकर ने मालूम कर ली थी, इसीलिए अपहरण किया था। लेकिन पासा उल्टा पड़ गया। इंस्पेक्टर धीरेंद्र अजीत के पिता को घर के बाहर ही मिल गए। वह जीप में सिपाहियों के साथ कहीं जाँच करने गए थे। अजीत के पिता ने उन्हें सब बता दिया और इस तरह ठीक मौके पर बदमाशों को दबोच लिया गया था।

शहर के अखबारों में अजीत और अनाथ जानू की कहानी सुर्खियों में छपी थी। फोटो भी निकले थे दोनों के। चौकीदार चाचा और भीमसिंह उसे बैठाकर सारी कहानी पूछते रहे।

भीमसिंह तो इतना खुश था कि हरेक को चाय पिलाता रहा मुफ्त ! बार-बार कहता, "अजी, यह जानू का कमाल है।"

अब जानू को अजीत के पास जाने पर कोई रोक नहीं थी। अजीत के पिता ने खुद उसकी पीठ थपथपाकर कहा था, "बेटे, हमें माफ करना ! उस रोज हम तुम पर बहुत जोर से चिल्लाए थे।"

"कैसी बात करते हैं आप !" कहकर जानू शरमा गया था।

शाम को अजीत के पिता से अनुमति लेकर वह अजीत के साथ शेख से मिलने चला, तो अजीत बहुत सकुचाया। उसने कहा, "जानू, मैं वहाँ नहीं जा

सकता।''

जानू ने कहा, ''अजीत, तुम शेख को गलत मत समझो। वह बहुत अच्छे आदमी हैं। उन्होंने कुछ लिए बिना ही तुम्हारा बस्ता लौटा दिया था और फिर कसूर तुम्हारा नहीं, तुम्हारे नकली दोस्तों का था।''

अब दोनों चले जा रहे थे, एक-दूसरे का हाथ थामे हुए। अजीत सोच रहा था, 'मैंने कितनी गलती की। बुरे लड़कों को दोस्त बना बैठा। सच्चे दोस्त ऐसे होते हैं जैसा जानू।' और जानू की कलाई पर उसकी पकड़ मजबूत हो गई। जैसे अब वह जानू का साथ कभी नहीं छोड़ेगा।

जानू ने मुस्कराकर अजीत की तरफ देखा। अजीत अपने विचारों में खोया था, लेकिन उसके हाथ की पकड़ कह रही थी—'जानू, अब तुम अकेले नहीं हो। हम दोनों पक्के दोस्त हो गए हैं।'

हाँ, सचमुच जानू अकेला नहीं था। वह एक पेड़ कटने पर कितना उदास हो गया था। लेकिन अभी बहुत सारे पेड़ हैं। तेज धूप, आँधी-पानी में छाया देनेवाले। जानू ने महसूस किया जैसे वह छायादार पेड़ों से घिरी सड़क पर चला जा रहा है। शाम हो गई है। सुबह के थके-माँदे पंछी लौट आए हैं और घोंसलों में बैठे नन्हे-मुन्ने पंछी चोंच खोलकर चिल्ला रहे हैं—''माँ-माँ-माँ!''

"माँ !" उसके होंठों से निकला और आँखों से दो आँसू ढुलककर खो गए।

दोनों दोस्त अब शेख की दुकान की तरफ बढ़ रहे थे। तेजी से उछलता खरगोश बार-बार जानू की आँखों के सामने तैर जाता था। वही खरगोशवाला बस्ता जिसमें दुनिया-भर का ज्ञान बतानेवाली किताबें थीं। जानू को लगा, जैसे अजीत ने अपने हाथों से खरगोश-वाला बस्ता उसके कंधे पर टाँग दिया हो। उसकी चाल तेज हो गई।

• • •

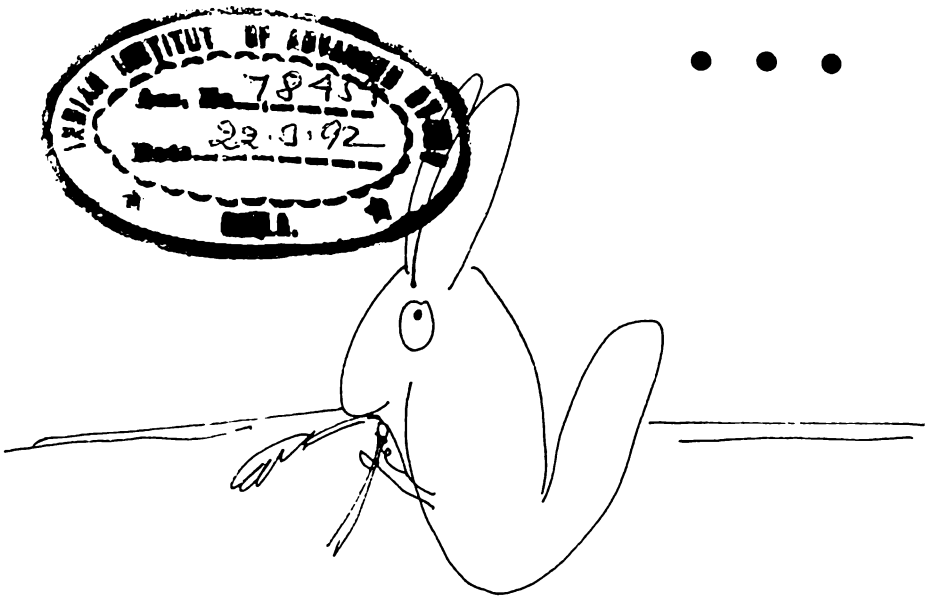

Acc. No. 7845
Date 22.1.92

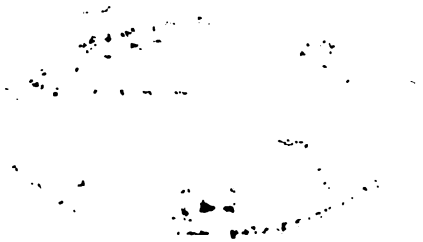

Library IIAS, Shimla
H 028.5 D 492 P
00078454